Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

वर्मा जी के उपन्यासों का कथा-संगठन

उपन्यास के तत्वों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान कथानक अथवा कथावस्तु का है। उसके उचित संघटन एवं निर्वाह में उपन्यासकार का कौशल निहित है। कोई-न-कोई विशेष योजना या सूत्र होता है, जिसके आधार पर उपन्यासकार अपने उपन्यास की कथा का आयोजन करता है। अधुनातन उपन्यास इस अवधारणा का खण्डन करता है। इस युग में कहानी सुनाना उपन्यासकार का अभीष्ट नहीं। 'आधुनिक उपन्यासकार प्रसादन से अधिक प्रयोजन पर दृष्टि रखता है। वह 'मूल्य' देना चाहता है, कथा का रस नहीं। ये मूल्य समस्त साहित्य के केन्द्र मानव के लिए होते हैं और मानवीय समस्याओं के निरीक्षण-परीक्षण तथा व्याख्या-विश्लेषण से ही प्राप्त किए जा सकते हैं, अतएव उसकी दृष्टि चरित्र पर जाती है, कथा पर नहीं।'[1] कुछ लोगों ने कथानक को इसलिए भी अनावश्यक माना है, क्योंकि उपन्यास जीवन का प्रतिरूप है और जीवन का संचालन पूर्व नियोजित रीति से कभी नहीं होता। अतः उपन्यास में ही नियोजित कथा की क्या आवश्यकता है। नित्शे ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'पूर्व निश्चित सभी बातें अयथार्थ होती हैं।'[2] हमारा जीवन असम्बद्ध एवं आकस्मिक घटनाओं से भरा रहता है, इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है, किन्तु विश्रृंखलित जीवन-यात्रा को किसी-न-किसी क्रम या योजना से प्रस्तुत करना उपन्यासकार के लिए आवश्यक है- यह भी मिथ्या नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि विश्रृंखलित कथानक वाले या कथानक-रहित उपन्यासों में भी कथा को एकसूत्रित या संयोजित करने का कार्य तो करना ही पड़ता है, भले ही वह कार्य लेखक को न करना पड़े। यह कार्य उपन्यास पढ़ते समय पाठक को करना पड़ता है और यह कम श्रम-साध्य एवं कष्ट-साध्य कार्य नहीं। केवल कुछ सुशिक्षित एवं प्रबुद्ध पाठक ही इस कार्य को सम्पन्न कर सकते हैं। अब प्रश्न यह उठता है 'क्या साहित्य को कुछ विशिष्ट लोगों तक ही सीमित कर दिया जाय? सामान्य व्यक्ति अपने उलझन भरे जीवन से त्राण पाने के लिए केवल कुछ सस्ते किस्म के मनोरंजनों का ही प्रयोग करे? क्या उपन्यास को इस तरह से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है कि वह सुशिक्षित और अल्पशिक्षित-दोनों प्रकार के पाठकों का मनोरंजन करने में सक्षम बने? उपन्यास को इतना क्षमतावान् एवं व्यापक बनाने के लिए ही सुसंगठित एवं श्रृंखलाबद्ध कथानक की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। इसीलिए आज भी कतिपय मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों को छोड़कर संगठित कथानक वाले उपन्यास लिखने-वाले उपन्यासकारों की संख्या ही अधिक है। और इसीलिए अधिकांश समीक्षकों ने भी उपन्यास

1- देखिए - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, डा० सत्यपाल चुघ, पृ० 84 पर श्री चुघ और उपन्यासकार जैनेन्द्र के विचार।

2- हिन्दी उपन्यास - श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० 444 से उद्धृत।

के तत्वों में कथानक के महत्व को सर्वोपरि स्वीकार किया है तथा उसके समुचित विन्यास एवं संगठन पर बल दिया है।[1] सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ० भगीरथ मिश्र का मत द्रष्टव्य है -'यह धारणा भ्रांत है कि उपन्यास में कथानक का कोई महत्व नहीं, या सामान्य कथानक को भी वर्णन-कौशल द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है। क्योंकि यदि वर्णन-कौशल के साथ कथानक की उत्कृष्टता भी मिल जाय तो मणिकांचन योग होगा। कथानक के समुचित विकास के लिए उसे घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध, कुतूहल और औचित्य को ध्यान में रखकर स्थिर करना चाहिए।'[2] पाश्चात्य विद्वान् हेनरी जेम्स ने भी कथावस्तु के महत्व को कुछ दूसरे ढंग से प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार चरित्र हमारे सामने किसी न किसी कार्य के प्रसंग में ही आते हैं और कार्य ही कथावस्तु का आधार है।[3] अतः यह कहा जा सकता है कि उपन्यास में कथानक का होना अत्यंत आवश्यक है, और उपन्यासकार की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि उसने कथावस्तु को किस ढंग से नियोजित किया है। कथावस्तु का क्रम अथवा आयोजन ही वह तत्व है जो एक कथावस्तु को दूसरी कथावस्तु से पृथक् करता है।[4]

कथावस्तु एवं उसके सुसंगठन की चर्चा करने के पश्चात् कथावस्तु की प्रमुख विशेषताओं पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। किसी सफल उपन्यास के दोषरहित कथानक के लिए निम्नलिखित गुणों का होना अनिवार्य माना गया है -

<u>मौलिकता</u> :- प्रत्येक साहित्यकार की सबसे बड़ी कसौटी मौलिकता है, उपन्यास के कथानक में भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। ~~विस्तृत उपन्यास के कथानक में भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती~~। विस्तृत संसार में से नवीन विषय के चयन, नवीन उद्भावना एवं उसके कुशल संयोजन, वर्णन-कौशल तथा प्रस्तुतीकरण के द्वारा उपन्यासकार अपनी मौलिकता का परिचय दे सकता है। उपन्यासकार की मौलिकता इस बात में भी निहित है कि वह घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करे कि एक क्रम तो बना रहे, किन्तु पाठक को उसका आभास न हो और उसका कुछ कुतूहल बराबर बना रहे। वह आगामी घटना और अन्तिम परिणाम का अनुमान कदापि न लगा सके।

1- देखिए -'हिन्दी उपन्यास'-डा० शिवनारायण श्रीवास्तव-पृ० 444, 'साहित्य-परिचय'- श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी-पृ० 92, 'साहित्य का साथी'-डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी-पृ० 91

2- काव्यशास्त्र- डॉ० भगीरथ मिश्र-पृ० 89

3. Henry James says: Character in any sense in which we can get at it is action and action is plot-'A Treatise on the Novel', by Robert Liddell, Page-72

4. "It is the order which distinguishes one kind of plot from another"- 'The structure of the Novel'-By Edwin Muir-P.16

<u>प्रबंध-कौशल</u> :- उपन्यास की प्रमुख एवं गौण कथाओं को इस प्रकार संगठित किया जाय कि उनमें कार्य-कारण श्रृंखला बनी रहे एवं समग्र प्रभाव खंडित न हो, इसी कलात्मक संगठन को प्रबंध-कौशल कहा गया है। उपन्यासकार के लिए प्रबंध-कौशल अनिवार्य है, विशेषकर वृहद्काय उपन्यासों में कथा के अनेक सूत्रों को अपनी लेखनी से समेटे रहने में उपन्यासकार की महती प्रबंध-क्षमता छिपी रहती है। प्रासंगिक कथाओं को आधिकारिक कथा से पूर्णरूपेण संबद्ध होना चाहिए, जिससे प्रत्येक प्रासंगिक कथा आधिकारिक कथा की सहायिका बने एवं उसमें अधिक प्राणशक्ति भर दे। एक समीक्षक ने लिखा है -"आधिकारिक कथानक महानद के समान होता है जिसे पूर्ण बनाने में प्रासंगिक कथानक सहायक नदियों के समान सहयोगी होते हैं और प्रमुख कार्य-व्यापार को और अधिक प्रभावशाली बनाते हैं।"[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीवन से चुने गये तमाम बिखरे सूत्रों को कलात्मक ढंग से विशिष्ट योजना के द्वारा संगठित करना ही प्रबंध-कौशल है, इससे कथानक की शोभा द्विगुणित हो जाती है।

<u>संभवता</u> :- उपन्यास की प्रत्येक घटना एवं वर्णन वास्तविकता पर आधारित होना चाहिए। यदि उपन्यासकार उपन्यास के उद्देश्य को पूरा करने के लिए अथवा सस्ती रोचकता उत्पन्न करने के लिए अनूठी कल्पना एवं असंभाव्य घटनाओं को समाविष्ट करता है, तो उसे उपन्यास की साहित्यिक सफलता की आशा नहीं करनी चाहिए। इस सम्बंध में डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री का कथन द्रष्टव्य है - "कल्पना से कहानी के आकर्षण की वृद्धि तो होती है पर उसकी अतिरंजना कथावस्तु का दोष बन जाती है। कथावस्तु के संघटन की सबसे पहली शर्त यही है कि लेखक अपने प्रति ईमानदार हो। वह जो जानता हो, वही लिखे।"[2] ऐसा नहीं है कि उपन्यास में कल्पना का प्रवेश ही नहीं होना चाहिए। उपन्यासकार एक स्रष्टा है, वह अपने चारों ओर फैले विस्तृत संसार में से नवीन सृष्टि का सृजन करता है और इसके लिए कल्पना का सहारा लेना नितांत आवश्यक है। परन्तु उसकी कल्पना यथार्थाधारित होनी चाहिए। असंगत या असंभव होने पर वह पाठक का विश्वास प्राप्त नहीं कर पायेगी और इससे उपन्यास की प्रभावान्विति को क्षति पहुँचे बिना नहीं रहेगी। स्वानुभूत ज्ञान के आधार पर जो रचना लिखी जाती है उसमें हृदय की गहराई का आभास स्पष्ट रूप से मिल जाता है, अन्यथा उधार लिया गया ज्ञान अपने छिछलेपन को तुरंत प्रकट कर देता है। इसीलिए उपन्यास-

---

1- हिन्दी उपन्यास -कला - डॉ० रामलखन शुक्ल, पृ० 20

2- हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन-डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ० 185

सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है -'अगर किसी लेखक की बुद्धि,कल्पना कुशल है तो वह सूक्ष्मतम भावों से जीवन को व्यक्त कर देती है। वह वायु के स्पंदन को भी जीवन प्रदान कर सकती है। लेकिन कल्पना के लिए कुछ आधार अवश्य चाहिए। जिस तरुण-लेखिका ने कभी सैनिक-छावनियाँ नहीं देखीं उससे यह कहने में कुछ भी अनौचित्य नहीं कि आप सैनिक-जीवन में हाथ न डालें।'[1] अत: यह आवश्यक है कि उपन्यासकार उन्हीं क्षेत्रों, वस्तुओं एवं घटनाओं के द्वारा कथानक का ढाँचा निर्मित करे, जिन्हें उसने स्वयं देखा हो अथवा अनुभव किया हो। वह उस कल्पना को भी अपने कथानक में समाविष्ट कर सकता है जो यथार्थ- जैसी प्रतीत हो अथवा यथार्थ पर आधारित हो। आजकल तो ऐसा भी सुनने में आया है कि कई साहित्यकार अपनी रचना में यथार्थता लाने के लिए रचना में वर्णित क्षेत्र की यात्रा करते हैं, उस स्थान के जीवन का साक्षात् अनुभव करते हैं और उस अनुभव के आधार पर रचना में वास्तविकता लाने का सफल प्रयास करते हैं।

<u>सुगठन</u> :- किसी भी अच्छे उपन्यास को सुगठित तो अवश्य होना चाहिए। उपन्यासकार के लिए आवश्यक है कि वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायक, आवश्यक बातों को ही ले, अनावश्यक को बिल्कुल छोड़ दे। अपने ज्ञान को प्रकट करने के मोह में कई लेखक अपनी कृति के सौन्दर्य को बिल्कुल विनष्ट कर देते हैं। अनावश्यक घटनाओं या क्रिया-कलापों के विस्तार से कथा की सारी योजना निष्फल हो जाती है और उपन्यास बोझिल हो उठता है। इसलिए उपन्यासकार को चाहिए कि वह बिना किसी लोभ में फँसे हुए, बिल्कुल निर्मम होकर अनावश्यक का त्याग और आवश्यक का ग्रहण करे। उपन्यासकार को विपुल घटनाओं को इस प्रकार जमाना चाहिए जैसे कि एक शिल्पी भवन-निर्माण के लिए एक-एक ईंट जमाता है। घटनाओं की एक-एक ईंट यस प्रकार जुड़ी हो कि बीच से निकालते ही न बने और यदि किसी प्रकार निकाल ही दी जाय तो कथावस्तु का सम्पूर्ण भवन, हिल उठे-ऐसे सुगठन में ही रोचकता -उपन्यास का एक महत्वपूर्ण कार्य एव रोचकता या मनोरंजकता प्रदान करना है। अपने जीवन के मुक्त एवं खाली क्षणों में, अपने कार्यभार के तनाव से छुटकारा पाने के लिए हमें किसी मनोरंजक कहानी से सहायता मिल सकती है, यदि कोई कहानी इस कार्य को पूरा करती है तो वह हमारे लिए एक

1- देखिए -'उपन्यास' पर श्री प्रेमचन्द का निबंध(हिन्दी उपन्यास - डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव पृ० 445 से उद्धृत)

पूर्ण टॉनिक बन जाती है और इस प्रकार वह अपने र उद्देश्य को निश्चितरूप से पूरा कर देती है ।[1] रंजकता एवं रोचकता का यह गुण कई प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है । उपरि विवेचित विशेषताओं के समावेश से भी उपन्यास में रोचकता आ जाती है, तथापि सर्वाधिक रोचकता आकस्मिक एवं अप्रत्याशित घटनाओं के संयोजन से लायी जा सकती है । परन्तु , रोचकता के लिए बार-बार आकस्मिक का सहारा लेना उचित नहीं, वरन् ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं का संयोजन अधिक उपयुक्त होता है जो पूर्णरूपेण आकस्मिक न हों । पाठक उनकी संभावना को स्वीकार कर सकें ।

कथावस्तु के दो भेद किए गए हैं - (1) सादा- इसमें एक ही कथा होती है ।
(2) गुम्फित - इसमें एक से अधिक कथाएँ होती है, इनमें एक प्रमुख कथासूत्र होता है और वह उपन्यास के प्रमुख पात्र से सम्बंधित होता है । इसी के द्वारा उपन्यास का मुख्य विचार, विषय और उद्देश्य ध्वनित होता है । इसी प्रमुख कथासूत्र को अंग्रेजी में 'थीम' की संज्ञा से अभिहित किया गया है । नाटक की ही भाँति इस प्रमुख कथा को 'बर्ष आधिकारिक कथा' कहा गया है । मुख्य कथानक को गतिशील एवं प्रभावशाली बनाने के लिए छोटी-छोटी कथाओं का समावेश उपन्यास में होता है - इन्हें 'प्रासंगिक कथा' कहा जाता है । प्रासंगिक कथाओं को अंग्रेजी में 'एपीसोड' या 'अंडरप्लाट' की संज्ञा दी गयी है । प्रासंगिक कथा के 'एपीसोड' नाम के कारण अंग्रेजी में 'एपिसोडिक ट्रीटमेंट' नाम से एक पद्धति प्रसिद्ध है, इसमें एक मुख्य कथासूत्र नहीं होता वरन् अनेक छोटी-छोटी प्रासंगिक कथाएँ आपस में इस प्रकार जुड़ी होती हैं कि उनमें से किसी एक को प्रमुख कह पाना कठिन हो जाता है । इसे इ हिन्दी में 'प्रसंग पद्धति' का नाम दिया गया है ।[2]

कथावस्तु सम्बंधी आधारभूत तथ्यों का विवेचन करने के पश्चात् यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कथावस्तु का विन्यास किन-किन रीतियों से किया जाता है । कथा-विन्यास के लिए अनेक प्रकार की शिल्प-विधियों का प्रयोग किया जाता है और एक शिल्प-विधि का उपयोग करते हुए उपन्यासकार अनेक शैलियों का प्रयोग कर सकता है ।

---

1. "One function of fiction is to provide amusement for the leisure hour and a welcome relief from the strain of practical affairs; and any novel which serves its purpose in this way may, on the sole condition that the pleasure it affords is wholesome and tonic, be held to have fully justified itself" _'An Introduction to The study of Literature" __By William Henry, Hudson, Page-132

1- देखिए-समसामयिक हिन्दी साहित्य : उपलब्धियाँ, सं० मन्मथनाथ गुप्त, पृ० 93

वस्तुत: `शिल्प' ( Technique ) और `शैली `( Style ) में बहुत अंतर है । `शिल्पविधि ` बहुत व्यापक शब्द है और इसमें सम्पूर्ण रचना -प्रक्रिया का समावेश हो जाता है ।`शैली ` अपेक्षाकृत सीमित है और वह शिल्पविधि का एक अंग मात्र है । इस सम्बंध में डॉ० सत्यपाल चुघ का मत उल्लेख्य है -`शिल्प-विधि (Technique) का सम्बंध रचना की प्रक्रिया से है, गढ़न(Structure) का उसके विन्यास से, प्ररचन(Design) का उसकी रूपरेखा से तथा शैली का मुख्यत: शब्द-योजना से । शैली, शिल्पविधि का एक अंग है ।`[1] किन्तु, कई आलोचकों ने इन दोनों शब्दों को मिला दिया है । डॉ० भगीरथ मिश्र ने कथा-विन्यास के प्रकारों की चर्चा करते हुए लिखा है -`उपन्यास के कथानक का विन्यास कई प्रकार से किया जा सकता है :- 1.एक द्रष्टा द्वारा वर्णित कथा के रूप में, 2.आत्मकथा के रूप में, 3. वार्तालाप द्वारा, 4.पत्रों द्वारा ।`[2] इन्हीं रूपों को डॉ० मक्खनलाल शर्मा ने शैली के अन्तर्गत लिया है और उसमें थोड़ा अंतर कर दिया है ।[3] उन्होंने शैली के पाँच भेद किए हैं - (1) वर्णनात्मक,(2) आत्मकथात्मक(3) पत्रात्मक,(4) डायरी शैली तथा (5) मिश्रित शैली । इन्हें ही कुछ परिवर्तित करके डॉ० प्रेम भटनागर[4] ने शिल्पविधि के अन्तर्गत लिया है - (1) वर्णनात्मक शिल्प विधि,(2) विश्लेषणात्मक शिल्पविधि,(3) प्रतीकात्मक शिल्प-विधि, (4) नाटकीय शिल्प-विधि,(5) समन्वित शिल्प-विधि । डॉ० भटनागर ने वर्णनात्मक शिल्प-विधि के अन्तर्गत चार शैलियों को स्थान दिया है - (1) अन्य पुरुष शैली,(2) आत्मकथात्मक शैली,(3) पत्र शैली और (4) डायरी शैली ।

वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक कुशल कलाकार अपनी नवीन रचना-पद्धति का आविष्कार करता है,[5] वह किन्हीं बँधे-बँधाए मानदण्डों से परिचालित नहीं होता ; अत: शिल्पविधि को किसी निश्चित संख्या में विभाजित कर पाना असंभव है । डॉ० त्रिभुवन सिंह का कथन है -` ऐसे ही न जाने कितने प्रयोग आधुनिक उपन्यास साहित्य में किये जा रहे हैं । यह

1- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि- डॉ० सत्यपाल चुघ, पृ० 13

2- काव्यशास्त्र- डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० 91

3- हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा,डॉ० मक्खनलाल शर्मा, पृ० 91-92

4- हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य- डॉ० प्रेम भटनागर, पृ० 38

5. 'Two Cheers for Democracy", P.-103

"Artists always seek a new technique and will continue to do so as long as their work excites them."

(प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि- पृ० 1 से उद्धृत)

उसका विकास काल है, अत: शिल्प प्रकार के सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहना न तो सम्भव है और न तो उचित ही ।'[1] अत: वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, वार्तालाप (इसे नाटकीय शैली कहा जा सकता है) आदि भेदों को शैली के अन्तर्गत लेना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। इन्हें शिल्पविधि के अन्तर्गत मानना उचित नहीं ।

वर्मा जी के उपन्यासों में उपन्यास-संरचना के लिए विभिन्न शैलियों एवं पद्धतियों का प्रयोग किया गया है । वर्मा जी के उपन्यासों में प्रयुक्त शैलियों की विस्तृत विवेचना 'भाषा शैली ' के अध्याय में की जायगी, तथापि प्रस्तुत अध्याय में विभिन्न शैलियों एवं पद्धतियों की चर्चा यथास्थान की जायगी । अगले पृष्ठों में वर्मा जी के उपन्यासों के कथा-संगठन की विवेचना की जायगी जिसमें उपन्यासों की कथा के संघटन, गठन एवं प्रबंध-कौशल की ओर विशेष लक्ष्य किया जायेगा ।

'पतन' वर्मा जी की प्रथम औपन्यासिक कृति है । उसमें विगत इतिहास के अत्यन्त आकर्षक एवं चर्चित व्यक्तित्व नवाब वाजिदअली शाह की विलासिता और तत्कालीन समाज की पतनोन्मुखी अवस्था को कथावस्तु का आधार बनाया गया है । वर्मा जी ने एक ऐतिहासिक चरित्र को लिया है और उससे सम्बंधित पर्याप्त जानकारी भी दी है, भले ही यह जानकारी दंतकथाओं पर आधारित हो ।[2] नवाब सम्बंधी जानकारी का किवदंतियों पर आधारित होना उतना आपत्तिजनक नहीं है, क्योंकि वे नितान्त मिथ्या हों, ऐसा प्रतीत नहीं होता । वाजिद-अली शाह का विलासी, आराम-तलब और वैभव सम्पन्न होना, उन पर अयोग्यता का आरोप लगाकर अंग्रेजों द्वारा उनका राज्य छीन लिया जाना व तो सर्वविदित तथ्य हैं, परन्तु इस ज्ञान को जिस ढंग से उपन्यास में ठूँसा गया है - वह अधिक आपत्तिजनक है । उपन्यासकार साफ-साफ लिखता है -'उनके विषय में कई किवंदतियाँ प्रसिद्ध हैं, और वे किवंदतियाँ मजेदार हैं ।'[3] इसके पश्चात् वह नवाब सम्बंधी अनेक किंवदंतियाँ इस प्रकार सुनाता चला जाता है जैसे 'नानी ' बच्चों को कहानी सुनाती है । प्रथम परिच्छेद में वाजिदअलीशाह की कथा का प्रारंभ और ग्यारहवें परिच्छेद में उनके राज्य के छिन जाने की घटनाओं का प्रस्तुतीकरण पूर्णरूपेण बचकाना प्रतीत होता है । इन्हें पढ़कर तुरंत स्पष्ट हो जाता है कि वह एक तरुण उपन्यास-कार का प्रथम प्रयास है ।

1- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद- डॉ० त्रिभुवनसिंह, पृ० 148

2- उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा-प्रो० ब्रजनारायणसिंह, पृ० 18,21

3- 'पतन' -पृ० 174

तत्कालीन सामाजिक चित्रण को उपन्यासकार ने मात्र यौन-संबंधों एवं प्रेम-व्यापारों तक सीमित रखा है। इसके लिए वर्मा जी ने कई प्रेम-त्रिकोण (प्रतापसिंह-सुभद्रा-रणवीर, भवानीशंकर-सरस्वती-प्रकाशचंद्र, प्रतापसिंह-गुलनार-बदेहसन) प्रस्तुत किए हैं और वह उन्हें किसी हद तक निभा भी ले गया है, परन्तु वह इस प्रकार अलग-अलग चलते हैं कि कहानी पढ़ने का आनंद भी नहीं आ पाता। कथा में बार-बार गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। न तो उपन्यास में परिच्छेदीकरण उचित ढंग से हुआ है और न पृथक्-पृथक कथाओं का कोई क्रम बना रह पाया है। दो उदाहरणों से इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। रणवीर की कथा उपक्रमणिका के पश्चात् तीसरे परिच्छेद में आती है और इसके बाद पाँचवें परिच्छेद में उसके थोड़ी देर के लिए दर्शन होते हैं, तत्पश्चात् तीन परिच्छेद छोड़कर रणवीर और सुभद्रा को उपन्यास के रंग-मंच पर लाया जाता है। इसके विपरीत सरस्वती चौथे और पाँचवें परिच्छेद में लगभग बराबर छायी रहती है। त्रुटिपूर्ण अनुच्छेदीकरण के कारण तो कथा में व्यवधान उपस्थित ही होता है, साथ ही उपन्यासकार के विभिन्न विषयों से सम्बंधी विचार एवं अनुभव कथा के विकास में और बाधा डालते हैं। प्रेम, तृष्णा, विवाह, वासना, व्यभिचार कर्तव्य और प्रेम, कर्तव्य और विश्वास, शकुन आदि की व्याख्या करते-करते उपन्यासकार मानो भूल जाता है कि वह उपन्यास लिख रहा है, वह एक चिन्तक या दार्शनिक की भाँति इनकी विवेचना में कुछ देर के लिए उलझ जाता है - इससे कथा का सूत्र ढीला होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार ने जीवन के अनुभवों एवं अध्ययन के आधार पर जो कुछ सीखा है, उसे बिना किसी विवेक के उपन्यास में भर देना चाहता है। कथा को विकास देने के लिए अनेक आकस्मिक एवं रहस्यात्मक घटनाओं का प्रयोग किया गया है, किन्तु संगति के अभाव में वे अपना समुचित प्रभाव नहीं डाल पातीं। अत: `पतन` वर्मा जी एक `शिथ शिथिल कथावस्तु` की कथाकृति है। उसकी असफलता का प्रमुख कारण यही है। जैसे पक पहले कहा जा चुका है, यह उनका पहला उपन्यास है, इसीलिए उसमें कथा-संयोजन और प्रबंध-कौशल की क्षमता का अभाव दिखता है। अनुभवहीनता के कारण उसमें इस कला का विकास नहीं हो पाया है।

`चित्रलेखा`, जो `पतन` के छ: वर्षों पश्चात् प्रकाशित हुई, में वर्मा जी ने `पतन` की त्रुटियों का निराकरण करने की का पूर्ण प्रयत्न किया। उन्होंने इस उपन्यास के लिए कोई नितांत नवीन विषय का चुनाव तो नहीं किया, किन्तु `पाप-पुण्य` की बहुचर्चित समस्या को आधार बनाकर अत्यंत सुनियोजित ढंग से उपन्यास का प्रणयन किया। प्रस्तुत प्र प्रबंध के प्रथम अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि वर्मा जी `कल्पना के धनी` हैं और कोई बड़ी-से-बड़ी योजना की रूपरेखा बनाने में उन्हें देर नहीं लगती, फिर भी उपन्यासकार

नागर का कहना है कि 'स्कीमों के बादशाह होने के बावजूद मैंने उन्हें योजना बनाकर कुछ लिखते हुए कभी नहीं पाया ।'[1] किन्तु वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों को देखकर इस कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता । वर्मा जी स्वयं भी स्वीकार करते हैं कि वह उपन्यास लिखने के पूर्व उसकी पूर्ण रूपरेखा कागज पर तो नहीं बना लेते, किन्तु उनके मस्तिष्क में सम्पूर्ण कहानी का ढाँचा ब अवश्य बवव०बैठ बन जाता है । अपनी रचना-प्रक्रिया के सम्बंध में उन्होंने लिखा है -'मुझे कहानी बाँधने की कला मिली है । मन में एक 'भाव' आता है जिसे मैं कहानी के लिए चुन लेता हूँ । उस भाव को लेकर मैं लिखने बैठता हूँ, और तब मेरे अन्दर वाला कहानीकार उस भाव को कथा-रूप में विकसित कर देता है । मुझे हरेक सूत्र को विस्तार के साथ बाँध देने की प्रवृत्ति मिली है । लेकिन इस सब में कभी-कभी बड़ा लम्बा समय लगता है क्योंकि जब तब तक कहानी सांगोपांग स्वाभाविक और प्राकृतिक नहीं उभरती, मेरी लेखिनी जैसे आगे बढ़ने से इनकार कर देती है । यह भाव पहले कहानी के आदि और अन्त के रूप में ही आता है, मैं इस आदि-अन्त को लिख तो नहीं लेता लेकिन यह आदि-अन्त मन में निर्धारित कर लेना पड़ता है । महीनों इस आदि-अन्त के बीच वाली घटनाओं के सम्बंध में सोचा करता हूँ । जैसे ही इस आदि अन्त का रूप स्पष्ट दिखा, मैं कहानी लिखने बैठ जाता हूँ, और तब मेरे अन्दर वाला कहानीकार चेतन रूप में सक्रिय हो जाता है । मैं जो लिखता हूँ वही bimd होता है अगर मैं कहीं बहकता हूँ तो कलम आगे बढ़ने से इनकार कर देती है, और आरम्भिक स्थिति में ही मैं उसे काट देता हूँ । एक बार लिखकर फिर संशोधन करने का प्रश्न ही मेरे सामने नहीं उठता क्योंकि सन् 1945 के बाद मैंने अपना कोई पूरा उपन्यास प्रेस में नहीं दिया, छपने के क्रम में ही मैं उपन्यास पूरा करता हूँ ।'[2]

'चित्रलेखा' के कथा-संगठन के सम्बंध में लिखने से पूर्व वर्मा जी की रचना-प्रक्रिया की चर्चा करने का कारण यह है कि इसी उपन्यास के द्वारा वर्मा जी को एक उपन्यासकार के रूप में पहचाना जाने लगा और उन्हें पर्याप्त ख्याति व लोकप्रियता मिली । इस ख्याति के पीछे 'चित्रलेखा' उपन्यास की आकर्षक चरित्राभिव्यक्ति एवं कुशल वस्तु-योजना का बहुत बड़ा हाथ रहा है । विशेष रूप से कहानी गढ़ने और कहने की कला उन्हें ईश्वरीय देन के रूप में मिली है, ऐसा प्रतीत होता है । इस कला का सूत्रपात 'चित्रलेखा' से हुआ है और उसका उत्तरोत्तर विकास होता चला गया है । वर्मा जी के दो-तीन उपन्यासों को छोड़कर उनकी इस कला का परिचय हमें उनके अधिकांश उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिल जाता है ।

1- भगवतीचरण वर्मा-अमृतलाल नागर, पृ० 7

2- वर्मा जी के दिनांक 21-8-74 के पत्र से उद्धृत ।

'चित्रलेखा ' एक पूर्व-नियोजित रचना है। उसका रूपबंध इस और स्पष्टरूप से संकेत कर देता है। उपन्यास का प्रारम्भ 'उपक्रमणिका ', अंत 'उपसंहार ' और मध्य बीजगुप्त-चित्रलेखा -कुमारगिरि के प्रेम त्रिकोण की मनोवैज्ञानिक संघटना के द्वारा निर्मित है। उपक्रमणिका में महाप्रभु रत्नाम्बर के शिष्य श्वेतांक के द्वारा 'पाप ' की समस्या उठायी गयी है। वह पूछता है -'और पाप ?' 'पाप ' के पहले 'और ' शब्द लगा देने से स्पष्ट हो जाता है कि 'पुण्य ' की चर्चा पहले की जा चुकी है। पाप-पुण्य की इसी समस्या की नींव पर उपन्यास का भवन खड़ा है। उपक्रमणिका के पश्चात् योगी कुमारगिरि और भोगी बीजगुप्त की कथा के द्वारा इस समस्या का परीक्षण किया गया है और उपसंहार में महाप्रभु रत्नाम्बर अपने शिष्यों श्वेतांक और विशालदेव के अनुभव के आधार पर, इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'हम न पाप करते हैं न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं, जो हमें करना पड़ता है।' इस प्रकार पाप-पुण्य की समस्या और उसके समाधान के सुदृढ़ सूत्र के द्वारा कथा का संयोजन हुआ है। 'चित्रलेखा ' में कथा-संगठन की कला का प्रारम्भ ही हुआ है, इसलिए यह सूत्र स्पष्ट दिखता है परन्तु कालान्तर में कथा की एकता और प्रभाव के लिए एक क्रम और सूत्र तो रहता है , किन्तु वर्मा जी की अभिव्यक्ति के कौशल के कारण उसका आभास नहीं होता। रंगमंच के नाटक की भाँति कार्य और चरित्र एक प्रवाह में आते जाते हैं, उनके संयोजक सूत्र की उपस्थिति पाठक के मन को खलती नहीं है।

'चित्रलेखा' में भी घटनाएँ पूर्व-नियोजित हैं, इसका आभास तो स्पष्टत: हो जाता है किन्तु उपन्यासकार ने उन्हें इतने आकर्षक एवं मनोहारी रूप में प्रस्तुत किया है कि उनमें वीरस नीरसता नहीं आने पायी है। डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव का कथन इसकी पुष्टि करता है -'चित्रलेखा ' की सभी घटनाएँ पूर्वनिश्चित हैं सही, किन्तु कलाकार के कौशल ने उन्हें इस प्रकार नियोजित किया है कि उनमें यन्त्रवत शुष्कता अथवा कृत्रिमता नहीं आने पायी है।'[1] उपन्यासकार के स्थानापन्न महाप्रभु रत्नाम्बर कथा को दो भागों में विभाजित कर देते हैं। एक का दृष्टा श्वेतांक है, वह बीजगुप्त की कथा में सम्मिलित होते हुए क्रमश: स्वयं अपनी कथा का निर्माण कर लेता है। दूसरी ओर विशालदेव कुमारगिरि की कथा का दर्शक मात्र बना रह जाता है। बीजगुप्त और कुमारगिरि के बीच डोलती चित्रलेखा सम्पूर्ण कथानक का आकर्षण-केन्द्र है। इन तीनों पात्रों में से एक-न एक कथानक की दृश्यावलियों में

1- हिन्दी उपन्यास - डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ० 23।

उपस्थित रहता है और उपन्यासकार की दृष्टि इनसे हटकर इधर-उधर भटकती नहीं। यशोधरा की कथा यद्यपि प्रासंगिक है, तथापि वह बीजगुप्त की कथा के साथ ऐसी मिल गयी है कि उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। बीजगुप्त के चरित्रोद्घाटन के लिए तो उसका महत्व है ही, साथ ही कुमारगिरि की कथा भी उससे विकास पाती है। कुमारगिरि बीजगुप्त और यशोधरा के सम्बंध का अवलम्ब लेकर ही चित्रलेखा को छलने में सफल होता है। इस प्रकार चित्रलेखा की लगभग सभी घटनाएँ एक-दूसरे से जुड़कर, कार्य-कारण की श्रृंखला बराबर बनाए रखती हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक घटना पात्रों के स्वभाव के अनुकूल घटित होती है अथवा उनके चारित्रिक-वैशिष्ट्य को उद्घाटित करने के लिए विकसित होती है। इस सम्बंध में डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर का मत द्रष्टव्य है - 'चित्रलेखा उपन्यास की कथा की घटनाएँ और पात्रों की स्वभाव-विशेषताएँ इतनी घुल-मिल गई हैं कि ऐसी घटना या प्रसंग अलग नहीं किया जा सकता, जो कथा के विकास एवं मोड़ की दृष्टि से अनावश्यक हो। ऐसा एक प्रसंग नहीं है जो पात्रों के स्वभाव वैशिष्ट्य से मेल न खाता हो। प्रसंग में और पात्र-वैशिष्ट्य की यह एकात्मकता उपन्यास के रूप को सौष्ठव और सौन्दर्य प्रदान करने में असमर्थ हुई है।'[1]

'चित्रलेखा' की केवल दो घटनाएँ ऐसी हैं, जो सामान्य-से-सामान्य पाठक को भी भुलावे में नहीं डाल पातीं, पाठक पर उनका विश्वास किसी भी प्रकार नहीं जम पाता। सम्राट चन्द्रगुप्त की राज्य-सभा में कुमारगिरि यौगिक शक्ति द्वारा ईश्वर ~~के०एक~~ का दर्शन करवाता है[2] तथा सामंत बीजगुप्त यशोधरा को हिमालय के एक योगी की विचित्र कथा सुनाता है।[3] इन दोनों चमत्कारपूर्ण घटनाओं के द्वारा उपन्यासकार न किसी कौतूहल की सृष्टि कर पाया है और न ही उपन्यास की अन्य घटनाओं से उनकी संगति स्थापित कर सका है। 'ईश्वर दर्शन' की घटना के द्वारा कुमारगिरि का वर्चस्वान् चित्र एकाएक खंडित हो जाता है। और वह एक बाजीगर-सा दिखने लगता है। इस घटना के सम्बंध में एक उत्तर (Explanation) दिया जा सकता है कि इसके द्वारा कुमारगिरि और चित्रलेखा की ~~xxxx~~ आत्मशक्ति का परिचय मिल जाता है तथा आत्मबल व सम्मोहन-शक्ति के द्वारा यह चमत्कार भी सम्भव हो

1- आलोचना-चित्रलेखा-एक पुनर्मूल्यांकन- चंद्रकांत बांदिवडेकर, पृ० 142

2- चित्रलेखा- पृ० 39

3- वही- पृ० 97, 98, 99

सकता है , किन्तु हिमालय के योगी वाली घटना सर्वथा अनावश्यक एवं अनुपयोगी है। संभवत: इन दोनों चमत्कारिक घटनाओं के समावेश की प्रेरणा उपन्यासकार को अनातोल-फ्रांस की 'ताइस' से प्राप्त हुई है। 'चित्रलेखा' के 'ईश्वर -दर्शन' और 'ताइस' के 'सत्य-दर्शन' में तो पर्याप्त साम्य है।[1]

'चित्रलेखा' में नाटकीयतापूर्ण घटनाएँ पुष्कल परिमाण में हैं, किन्तु अधिकांशत: उनका औचित्य एवं विश्वसनीयता खंडित नहीं हुई है। कुछ स्थल इसके अपवाद अवश्य हैं। सामंत बीजगुप्त और चित्रलेखा का जंगल में भटककर कुमारगिरि की कुटी में पहुँच जाना, योगी कुमारगिरि का एक राज्य-सभा में आकर दार्शनिक वाद-विवाद में भाग लेना तथा एक गृहस्थ के घर पर विवाह जैसी सांसारिक बातों में रस लेना अस्वाभाविक एवं आरोपित-सा प्रतीत होता है। उपर्युक्त चमत्कारिक घटनाओं को हटा देने से और इन आकस्मिक घटनाओं को कुछ दूसरे ढंग से प्रस्तुत करके 'चित्रलेखा' उपन्यास की कलात्मकता और अधिक बढ़ायी जा सकती थी। 'चित्रलेखा' के अंत(उपसंहार) के सम्बंध में प्राय: आपत्ति की गयी है, इस सम्बंध में हमारा विचार यह है कि उपन्यासकार ने कथा-संगठन के लिए संस्कृत की नीतिकथाओं[2]- जैसे शिल्प को अपनाया है और उस दृष्टि से 'उपक्रमणिका' की तरह 'उपसंहार' भी उचित ही है। यों अगर इन्हें हटा दिया जाता है और समस्या एवं समाधान को मुख्य कथानक में ही अंतर्युक्त कर लिया जाता है तो उपन्यास को कोई हानि न पहुँचती, किन्तु यह लेखक का अपना दृष्टिकोण था। उसने अपने ढंग से उपन्यास के शिल्प का निर्माण किया है। आपत्तिजनक तो यह है कि विशालदेव अपने गुरु कुमारगिरि के चरित्र-स्खलन को देखकर भी उसे 'अजित' एवं 'पूर्ण' किस प्रकार कह सका है। उसका यह कथन आरोपित एवं उपन्यास की घटनाओं के प्रतिकूल अवश्य है। यहाँ उपन्यासकार की लेखनी चूक गयी है।

जहाँ तक 'चित्रलेखा' की विचार-राशि एवं दार्शनिक -व्याख्याओं का प्रश्न है, वे विदुषं पात्रों के स्वभाव के अनुकूल हैं और कथानक की रोचकता के कारण शुष्क एवं नीरस नहीं हो पायी हैं। उपन्यास की गुम्फित संरचना में वह थिगली-जैसी नहीं लगतीं वरन् उसके एक रोचक अंश के रूप में उनका अस्तित्व श्लाघ्य है। उपन्यास की रचना मिश्रित शैली में हुई है, उसमें इतिहास शैली, नाट्य-शैली एवं विश्लेषणात्मक शैली का सुन्दर समन्वय

1- हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव- डॉ० भारतभूषण अग्रवाल, पृ० 348-49

2- हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास, -डॉ० प्रतापनारायण टंडन, पृ० 248

दृष्टिगोचर होता है। यह 'चित्रलेखा' के शिल्प एवं सौष्ठव का ही वैशिष्ट्य है कि विभिन्न समीक्षकों को उसका रूप भिन्न प्रतीत होता है। किसी ने उसे चरित्र-प्रधान, किसी ने व्यक्तिवादी, किसी ने सामाजिक रोमांस, किसी ने समस्या-प्रधान माना है और किसी ने उसमें स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति देखी है। अतः यह कहा जा सकता है कि कथावस्तु का चुस्त गठन, कसाव, क्षिप्र गति, विषयैक्य एवं कलात्मक सौष्ठव उपन्यासकार की क्षमता का उत्तम निदर्शन प्रस्तुत करता है। 'चित्रलेखा' के लेखन-काल पर ध्यान देने से उसका महत्त्व और मूल्य अधिक बढ़ जाता है।

'तीन वर्ष' में चित्रलेखा की एक महत्वपूर्ण समस्या प्रेम को आधार बनाया गया है, किन्तु इसमें वह कामजनित न होकर अर्थ के परिप्रेक्ष्य में विचारित एवं परीक्षित है। उपन्यास दो खण्ड में विभाजित है, प्रथम खण्ड में अर्थ के लिए प्रेम का त्याग करनेवाली प्रभा नायक के जीवन का लक्ष्य है और दूसरे खण्ड में प्रेम के लिए अपना सर्वस्व गँवा देनेवाली सरोज अपने प्राण त्यागकर ही रमेश का विश्वास प्राप्त कर पाती है। यही एक सम्पर्क सूत्र है जो सम्पूर्ण उपन्यास की कथा को गाढ़बद्ध किए है। उपन्यास के तीन वर्षों में से दो वर्ष की कथा प्रथम खण्ड (पृष्ठसंख्या 137) में है तथा एक वर्ष की कथा द्वितीय खण्ड (पृष्ठसंख्या 118) में है। उपन्यास का आदि-अंत ही नहीं, सम्पूर्ण कथा-क्रम उपन्यासकार के मस्तिष्क में स्पष्ट था, ऐसा प्रतीत होता है; किन्तु कथानक के प्रवाह में उसका सूत्र बाधा उत्पन्न नहीं करता। बहुत ध्यान देने पर ही उसकी सुस्पष्ट योजना का आभास मिलता है। प्रथम खण्ड की दो वर्ष की कथा में छात्र-सहयोगियों की विनोदी व्यस्तताओं, क्लासरूम की चुहलबाजियों तथा सिद्धांत-चर्चाओं एवं वाद-विवादों के बीच कथानक विकसित होता है। द्वितीय खण्ड के एक वर्ष में ही रमेश एवं सरोज की मानसिक उलझनों एवं क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण पृष्ठसंख्या प्रथम खण्ड के लगभग बराबर पहुँच जाती है।

प्रथम खण्ड में कथानक अत्यधिक स्वाभाविक एवं यथार्थ है, इसीलिए उसमें अपेक्षाकृत शिथिल कथावस्तु के होते हुए भी पाठक को अपने प्रवाह में बहा ले चलने की शक्ति है। इस खण्ड में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिन्हें छोड़ा जा सकता था, या कम किया जा सकता था। अजित के मित्रों का विस्तृत परिचय[1], कृष्णमूर्ति के भाषण के पश्चात् विद्यार्थियों का पारस्परिक वाद-विवाद[2], प्रेम और विवाह[3] के सम्बंध में छात्रों के वार्तालाप आदि के प्रसंग कुछ अधिक

1- तीन वर्ष- पृ० 27 से 29

2- वही- पृ० 106 से 113

3- वही- पृ० 50 से 55

लम्बे खिंच गये हैं। ये नितांत अनावश्यक एवं अस्वाभाविक हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बहस-मुबाहसा करना छात्रों का स्वभाव होता है, उनका शौक होता है। परन्तु उनकी लम्बाई ने उन्हें नीरस बना दिया है। अजित के जागीरदार मित्रों का परिचय इसलिए अनुपयोगी लगता है, क्योंकि उनमें से किसी के भी दुबारा दर्शन नहीं होते। इसी प्रकार अजित-लीला एवं अविनाश से सम्बंधित प्रसंग भी कथानक के आवश्यक अंग नहीं, लीला द्वारा लखनऊ आने का आग्रह करने पर अजित का लखनऊ में बीती घटना का वर्णन,[1] अविनाश द्वारा शेर के शिकार की कहानी सुनाने पर प्रत्युत्तर रूप में अजित की मगर के शिकार की कहानी[2] कथानक को रोचकता तो प्रदान करती हैं, किन्तु मुख्य कथानक की विशिष्ट धारा से उनका सीधा संबंध नहीं है। वह मात्र अजित के चुहल भरे स्वभाव को प्रदर्शित करने के लिए समाविष्ट की गयी हैं। यह भी हो सकता है कि वह उपन्यासकार के विद्यार्थी-मित्रों के निजी अनुभवों पर आधारित हों और उन्हें रोचक ढंग से सुनाने के मोह का संवरण वर्मा जी न कर सके हों।

इसके विपरीत द्वितीय खण्ड के कथानक में अधिक कसाव है। विनोद के साथी श्यामविहारी व बांकेलाल तथा शेरसिंह, लाला नौरतनदास और मुंशी उलफतराय के प्रसंग रमेश के चारित्रिक वैशिष्ट्य, परम्परागत संस्कार एवं उद्विग्न मनःस्थिति के चित्रण के लिए रखे गये हैं।

सुन्दर कहानी का चुनाव एवं उसकी विश्वनीय अभिव्यक्ति में वर्मा जी की मौलिकता, देखी जा सकती है। भारतीय विश्वविद्यालयीय-जीवन का अत्यंत रोचक एवं यथार्थ चित्र वर्मा जी ने इस उपन्यास के माध्यम से खींचा है। क्लासरूम से लेकर हॉस्टेल तक तथा विद्यार्थियों के सामाजिक जीवन के ब्योरेवार विवरण तथा वार्तालाप के द्वारा उन्होंने उच्चस्तरीय विद्यार्थी-जीवन का वास्तविक चित्र खींचा है। अपने कथन की पुष्टि के लिए हम डॉ० त्रिभुवनसिंह का मत उद्धृत कर सकते हैं - "जितने भी चित्र वर्मा जी ने इसमें उतारे हैं, उनमें उन्हें इसलिए आशातीत सफलता मिली है क्योंकि वह उनका स्वयं का देखा ही नहीं था, सम्भवतः वे उसके प्रमुख पात्र भी रहे हों। उपन्यास की घटना के तीन वर्ष, उनके स्वयं के प्रयाग विश्वविद्यालय में लॉ के छात्र की हैसियत से बिताये एवं एक वर्ष कानपुर में देखे, जहाँ पर वर्मा जी का घर ही है, हुए समय हैं। इसलिए जितने भी चित्र एवं व्यंग्य आये हैं, वे अत्यंत ही यथार्थ हैं।"[3]

1- तीन वर्ष- पृ० 63 से 65

2- वही- पृ० 72

3- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद- डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० 253

उपन्यास की रचना यों तो वर्णनात्मक शैली में ही हुई है, किन्तु पात्रों के वार्तालाप को इस उपन्यास में विशेष महत्व दिया गया है। घटनाएँ इस क्रम से रखी गयी हैं कि पाठक की उत्सुकता बराबर बनी रहती है। इस प उपन्यास में संयोग एवं आकस्मिक घटनाएँ भी हैं, किन्तु वे अस्वाभाविक तथा कृत्रिम नहीं प्रतीत होतीं, इसलिए जिन आलोचकों ने इस उपन्यास की स्थितियों, भावनाओं एवं पात्रों पर मिथ्या होने का आरोप लगाया है,[1] उनसे कदापि सहमत नहीं हुआ जा सकता। वह भारतीय जीवन का सामूहिक स्वरूप भले ही न हों, किन्तु वर्ग-विशेष में उनके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' वर्मा जी का प्रथम बृहदकार उपन्यास है। इसका कथानक विशाल है, तथा कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत है। इस उपन्यास में एक ताल्लुकेदार परिवार के चार व्यक्तियों के माध्यम से सन् 1930 के के समय वर्तमान तीन प्रमुख राजनीतिक पार्टियों की गतिविधियों एवं दुर्बलताओं को चित्रित करने का यत्न किया गया है। एक परिवार से सम्बंधित होने के कारण इस उपन्यास में सामाजिक और आर्थिक पहलू भी समाविष्ट हो गये हैं। स्पष्ट है कि इतने विशाल उद्देश्य को लेकर चलनेवाले उपन्यास के कथानक को सुनियोजित कर पाना एक श्रमसाध्य कार्य था और उसमें उपन्यासकार की कला की परीक्षा भी थी। वर्मा जी इस परीक्षा में खरे उतरे हैं। इसमें कार्य-कारण श्रृंखला का निर्वाह बराबर हुआ है।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का कथानक सुनियोजित तो है किन्तु सुगठित नहीं। पंडित रामनाथ तिवारी और उनके तीन बेटों के सम्पर्क में आनेवाले अनेक व्यक्तियों के अवांतर प्रसंग इसमें आ गये हैं, जिनसे कथा पर उपन्यासकार की पकड़ कई बार ढीली पड़ गयी है। कुछ प्रसंग अधिक विस्तृत भी हो गये हैं किन्तु वे पूर्णरूपेण अनावश्यक नहीं हैं। उनसे या तो प्रमुख पात्रों के चरित्र का नवीन वैशिष्ट्य प्रकाशित हुआ है, या प्रमुख कथानक को गति मिली है। अतः 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में स्थितियों के सूक्ष्म अंकन के लिए विस्तार देने की प्रवृत्ति तो मिलती है, किन्तु अनपेक्षित स्थलों के समावेश की नहीं।

रामनाथ तिवारी और उनके तीनों पुत्र दयानाथ, उमानाथ और प्रभानाथ तीनों के गुण लगभग एक से हैं, किन्तु सबकी विचारधारा अलग-अलग है। इसीलिए उनके कार्यक्षेत्र भिन्न

1- डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव-'हिन्दी उपन्यास', पृ० 235 तथा गंगाप्रसाद पाण्डेय-'हिन्दी कथा-साहित्य'- पृ० 17।

है, मित्र-मंडली भिन्न है और इसीलिए उनका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कथानक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है। नाटक की भिन्न दृश्यावलियों के समान एक-एक दृश्य उभरते जाते हैं और उनमें विद्यमान पात्रों के अतिरिक्त शेष पात्र 'ग्रीनरूम' में पहुँच जाते हैं। प्रभानाथ विदेश से लौटे अपने भाई उमानाथ को लेने कलकत्ता जाता है, तो उन्नाव,बानापुर तथा उससे सम्बंधित व्यक्ति कुछ समय के लिए उपन्यास के पृष्ठों से अलग हो जाते हैं और कलकत्ता का जीवन , वहाँ के लोग, उमानाथ उसकी विदेशी पत्नी तथा मारिसन आदि कथा के विकास में सहायक बनते हैं। यहीं प्रभानाथ का परिचय वीणा, जो क्रांतिकारी दल की सदस्या है, से होता है और उसका मन वीणा से ऐसा जुड़ता है कि वह स्वयं उस दल में हो जाता है। वह वीणा को कानपुर बुलाने की व्यवस्था कर लेता है और इसके बाद प्रभानाथ को कलकत्ता जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार उमानाथ कम्युनिज़्म का प्रचार साहित्य के माध्यम से करने के लिए इलाहाबाद के साहित्यिक समाज का चक्कर लगाता है। वर्मा जी की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने यायावर जीवन में जिन क्षेत्रों का अनुभव लिया है, उन्हें वह अपने उपन्यास में किसी-न-किसी प्रकार समाविष्ट अवश्य कर लेते हैं। उनका कल्पनाशील मस्तिष्क उसके लिए उपयुक्त स्थितियों का निर्माण करने में बड़ा दक्ष है। डॉ० कुसुम वार्ष्णेय ने उमानाथ की इलाहाबाद-यात्रा पर आपत्ति उठाते हुए लिखा है -'अपने सिद्धान्तों और आदर्शों के प्रचार के लिए वह साहित्य का सहारा लेने का प्रयत्न करता है और अपने सहयोगियों के साथ इलाहाबाद जा पहुँचता है। किन्तु यहाँ आकर उमानाथ के हाथ कुछ नहीं लगता। प्रश्न उठता है, तो फिर वर्मा जी ने उमानाथ का इलाहाबाद भ्रमण क्यों दिखाया है? कथानक की दृष्टि से भी पैंतालीस पृष्ठों में इलाहाबाद के साहित्यिक जीवन की गतिविधि का वर्णन आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक अपने स्थानीय अनुभव को कहे बिना नहीं रह सका है। यही नहीं, इलाहाबाद के साहित्यिक जीवन का जो चित्रण लेखक ने किया है, वह बड़ा विचित्र और हास्यास्पद है।'[1] इस सम्बंध में यह कहा जा सकता है कि कम्युनिज़्म के प्रचार के लिए साहित्य का सहारा लिया जाना पर्याप्त बुद्धिमत्तापूर्ण एवं औचित्यपूर्ण है। और साहित्य-क्षेत्र भी वर्मा जी ने ऐसा चुना है जो उपन्यास के मुख्य कार्यस्थल के निकट पड़ता है। जहाँ तक उसके लम्बे और हास्यास्पद होने का प्रश्न है, वह लम्बा तो अवश्य है और कुछ अतिरंजित भी हो सकता है, किन्तु वह नितांत असत्य एवं विचित्र कदापि नहीं है। समीक्षिका ने

1- भगवतीचरण वर्मा ('चित्रलेखा' से 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' तक)-डॉ० कुसुम वार्ष्णेय, पृष्ठ- 95

स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है कि 'लेखक अपने स्थानीय अनुभवों को कहे बिना नहीं रह सका है', स्वयं जो देखा गया है, अनुभव किया गया है वह तथ्यविहीन कैसे हो सकता है। फिर वर्मा जी ने इलाहाबाद के साहित्यिक जीवन का चित्रण व्यंग्य-शैली में लिखा है, व्यंग्य तो विकृतियों और दुर्बलताओं पर ही किया जायगा। यदि कोई अच्छाइयाँ बखानेगा तो उसमें व्यंग्य कहाँ रहेगा। उन साहित्यकारों में समाजवादी चेतना नहीं थी, ऐसा इस व्यंग्य चित्र से ध्वनित नहीं होता, परन्तु साहित्यकारों में वैयक्तिक मत-मताग्रह एवं राग-द्वेष के आरोपण की प्रवृत्ति चरम-सीमा पर पहुँची हुई थी और उनका चिन्तन सही दिशा की ओर नहीं था, यही इसकी व्यंजना है। इस प्रसंग की अवतारणा विशेष उद्देश्य को लेकर ही की गयी है। दयानाथ के कांग्रेसी मित्रों के विस्तृत परिचय को भी निरुद्देश्य नहीं माना जा सकता। इसका उद्देश्य यह दिखाने का हो सकता है कि कांग्रेस में कैसे-कैसे लोगों का जमघट था - कुछ सच ही ईमानदार और सच्ची लगन वाले थे, कुछ केवल पद-लालसा से प्रेरित होकर कांग्रेस में सम्मिलित हो गये थे और कुछ भावनावश ही चले आये थे। इसी प्रकार मारीसन-हिल्डा प्रसंग और मिसेज सिम-मारीसन प्रसंग भी सोद्देश्य ही रखे गये हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ऐसे प्रसंग विस्तृत भले ही हों, किन्तु उनमें पर्याप्त रोचकता अवश्य है। वर्मा जी की वर्णन-शैली ने उन्हें स्मरणीय बना दिया है। इसी प्रकार का एक अन्य प्रसंग उल्लेखनीय है। झगड़ू मिसिर भांग छानते हुए विजया भवानी की जो कथा उमानाथ को सुनाते हैं, वह उनकी 'भंग की तरंग' का प्रदर्शन भले ही करे, इससे अधिक उसकी उपयोगिता समझ में नहीं आती। परन्तु स्थानीय बोली में उसका वर्णन-कौशल उसे उपन्यास की सर्वाधिक रोचक कथा बना देता है। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास में ऐसे अनेक स्थल हैं जो अधिक विस्तृत हो गये हैं, किन्तु उनकी सोद्देश्यता एवं रोचकता के कारण उनके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हाँ। इन प्रसंगों के कारण कथानक के कसाव को अवश्य क्षति पहुँची है।

इस उपन्यास में आकस्मिक घटनाओं एवं संयोगात्मक परिस्थितियों को भी पर्याप्त महत्व दिया गया है। कहीं कथानक को आगे बढ़ाने के लिए, तो कहीं कथा को समेटने के लिए और कहीं-कहीं पात्रों की अन्तर्बाह्य क्रिया-प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिए इनका समावेश किया गया है। प्रभानाथ की कलकत्ता-यात्रा में वीणा से उसकी भेंट बड़े ही आकस्मिक ढंग से नाटकीयतापूर्ण स्थितियों में होती है और पिता के इशारों पर घूमने वाले युवक का जीवन-क्रम ही बदल जाता है। इस घटना से प्रभानाथ की कहानी के लिए आधारभूत सामग्री प्राप्त होती है। मनमोहन द्वारा रामसिंह की हत्या का कुछ-कुछ आभास अवश्य मिल जाता है, परन्तु

परमेश्वर की मृत्यु के उपरांत उसका एकाएक बानापुर से चल देना और रहस्यात्मक ढंग से रामसिंह की हत्या करना एक और कुतूहल की सृष्टि करता है और घटनाक्रम में तेजी आ जाती है। इसी प्रकार विश्वम्भरदयाल के नाटकीय प्रवेश से लेकर, श्यामनाथ के घर उसकी प्रभानाथ से भेंट, प्रभानाथ का सिविल सर्जन के यहाँ आत्मसमर्पण, विश्वम्भरदयाल की वीणा द्वारा हत्या तक की घटनाएँ अधिकांशतः आकस्मिक ढंग से ही घटित हुई हैं, और इससे कथानक को तीव्र गति मिली है। श्यामनाथ द्वारा बहलाने फुसलाने पर प्रभानाथ क्रांतिकारियों का नाम बताने के लिए सहमत हो जाता है और उसका मुखबिर बन जाना लगभग निश्चित हो जाता है किन्तु, अचानक वीणा की भर्त्सना से रामनाथ का मन हिल उठता है और वह प्रभानाथ को मुखबिर न बनकर फाँसी के तख्ते पर लटक जाने के लिए प्रेरित करते हैं। एक पिता द्वारा अपने पुत्र को फाँसी के तख्ते पर लटका देने का कार्य असंभव-सा है किन्तु उसके लिए स ऐसी कार्य-कारण-श्रृंखला का निर्माण किया गया है कि वह स्वाभाविक ही दिखता है। इसके पश्चात् वीणा द्वारा प्रभानाथ को जहर देना, विश्वम्भरदयाल की हत्या करके स्वयं आत्महत्या करना आदि सभी घटनाएँ अप्रत्याशित रूप से घटती हैं। इनके द्वारा उपन्यासकार ने अविरल कुतूहल का वातावरण बनाए रखा है। उपन्यास का 'क्लाइमेक्स' अपने उचित 'टेम्पो' को बनाए रखने में सफल हुआ है। इन घटनाओं के द्वाराउपन्यास में गति भी आई है व एवं कथानक के बिखरे सूत्रों को समेटने में भी सहायता मिली है।

उपन्यास में मुख्यतः वर्णनात्मक शैली का ही उपयोग किया गया है, आवश्यकतानुसार विश्लेषणात्मक शैली का भी समावेश हो गया है। एक स्थान पर पूर्व-दीप्ति पद्धति का प्रयोग छायारूप में मैनेजर रामसिंह की हत्या का सम्बंध मनमोहन से जोड़ने के लिए हुआ है - 'एकाएक भगद्दू काँप उठे। अचानक ही उन्हें मनमोहन की याद हो गयी। 'निर्बल और सबल की लड़ाई केवल एक तरह सम्भव है, निर्बल सबल पर जब वार करे, पीछे से करे।' और भगद्दू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे उस समय सोच रहे थे ---'क्या मनमोहन ने यह किया है? लेकिन मनमोहन तो कल शाम के समय ही उन्नाव चला गया था, उमानाथ उसे खुद गाड़ी पर चढ़ा आए थे।''[1] परन्तु मुख्य स्वर इतिहास- शैली का ही रहा है।

'आखिरी दाँव' उपन्यास के कथानक का आदि-अंत तो वर्मा जी के मन में निश्चित-रूप से रहा होगा और उस उपन्यास के पात्रों की रूपरेखा भी स्पष्ट होगी, परन्तु उसके

1- टेढ़े मेढ़े रास्ते- पृ0 349

प्रस्तुतीकरण में वह योजना और गठन नहीं मिलता ; जिसकी अपेक्षा उनसे की जा सकती थी। इस उपन्यास में वर्मा जी का मुख्य उद्देश्य फिल्मी जीवन की विकृतियों एवं पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करना है। इसके साथ-साथ दुग्ध-व्यवसाय की आड़ में पनपनेवाले अवैध धंधों पर एक नजर डाल देना भी उन्हें अभीष्ट था। बम्बई के फिल्मी जीवन से तो वर्मा जी परिचित रहे ही हैं, अपने बम्बई प्रवास में वहाँ के अन्य क्षेत्रों का भी उन्हें अनुभव हुआ होगा। इन अनुभवों में तारतम्य बिठालकर एक कथा गढ़ने के लिए वर्मा जी ने अनेक आकस्मिक घटनाओं एवं संयोगों का अवलम्ब लिया है। ये घटनाएँ बिल्कुल असंभव एवं अस्वाभाविक तो नहीं हैं, किन्तु उनका प्रभाव चित्रपट की ही भाँति पड़ता है। उपन्यास की कथा को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है - रामेश्वर और चमेली का ग्रामीण जीवन, ग्राम्य-जीवन की परिस्थितियों से मुक्ति पाने के लिए बम्बई आना तथा बम्बई में पैसा कमाना पाने के लिए हर प्रकार से प्रयत्नशील होना। रामेश्वर और चमेली के ग्रामीण जीवन वाला अंश पूर्णरूपेण सत्य एवं स्वाभाविक बन पड़ा है किन्तु उसे उपन्यासकार ने मुख्य कथा की पृष्ठभूमि जैसा महत्व दिया है। बम्बई आकर रामेश्वर और चमेली की भेंट बिल्कुल नाटकीय एवं संयोगात्मक परिस्थितियों में होती है। यहाँ तक भी ठीक है परन्तु रामेश्वर जिस प्रकार का व्यवहार चमेली से करता है, वह स्वाभाविक नहीं लगता है और इसके बाद तो ग्रामीणा चमेली का कुशल गायिका एवं नर्तकी बन जाना कदापि स्वीकार्य नहीं। इसी प्रकार फिल्म व्यवसाय में पूंजीपतियों का प्रवेश, किशोर जैसे लेखकों की महत्वाकांक्षा, दुर्दशा एवं उनकी पतित अवस्था के चित्र यथार्थ हैं, किन्तु शिवकुमार के समक्ष चमेली का शारीरिक आत्मसमर्पण जितनी सामान्य अवस्था में दिखलाया गया है, वह स्वाभाविक नहीं। यह ठीक है कि जब कोई व्यक्ति नीचे गिरता है तो बड़ी तेजी से गिरता जाता है, ऐसा ही चमेली के साथ भी होता है, किन्तु ग्रामीण संस्कारों में पली चमेली अपने अवैध शारीरिक सम्बंधों को जितनी आसानी से झेल जाती है, उसके चित्रण में तीव्र मानसिक संघर्ष का अभाव कुछ खटकता अवश्य है। तात्पर्य यह है कि उपन्यास की परिस्थितियाँ पूर्ण मिथ्या तो नहीं, किन्तु उनके चित्रण में पर्याप्त कलात्मकता नहीं आ पायी है। परिस्थितियाँ आरोपित एवं कृत्रिम हैं, इसका आभास ही उपन्यास के महत्व को कम कर देता है।

उपन्यास में घटनाएँ बड़ी तीव्र गति से घटित होती हैं और अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूरा सहयोग करती हैं। अतः उसमें अनावश्यक विस्तार की संभावना ही नहीं थी। वस्तुतः 'आखिरी दाँव' फिल्म के लिए ही लिखी गयी एक कहानी पर आधारित उपन्यास है; अतः

1- वर्मा जी के एक पत्र (दिनांकहीन) के आधार पर।

उसमें अतिनाटकीय स्थितियों का होना स्वाभाविक ही है। उपन्यासकार की वर्णन-शैली दृश्य-विधान में सफल हुई है, घटनाएँ जिस रूप में घटित होती हैं उसका सम्पूर्ण चित्र हमारी आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

'अपने खिलौने' एक हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यास है। इसमें आधुनिक युग के उच्च-वर्गीय युवक-युवतियों के उन्मुक्त जीवन एवं प्रेम-व्यापार को लक्ष्य बनाया गया है। इस वर्ग की जिन प्रवृत्तियों पर उपन्यासकार चुटकी लेना चाहता है, उन्हें ध्यान में रखते हुए उसने एक काल्पनिक कथा गढ़ी है। यह कहानी काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ पर आधारित है। परिस्थितियाँ कृत्रिम हैं, किन्तु असत्य कदापि नहीं। उपन्यासकार ने उपन्यास के लिए आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण समस्या को विषय के रूप में चुना है और शैली चुनी है हास्य-व्यंग्य की। विभिन्न अतिनाटकीय घटनाओं के माध्यम से उच्चवर्गीय युवक-युवतियों की प्रदर्शनप्रियता, रूमानियत आदि का चित्रण किया गया है। डॉ० प्रेम भटनागर ने इस उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखा है कि -'कल्पित, भावुकतापूर्ण और अस्वाभाविक घटना-क्रम ने उपन्यास के कथ्य और शिल्प को खोखला बना दिया है ---- इनके द्वारा वैचारिक अन्वेषण, दार्शनिक गवेषणा या सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा नैतिक चिन्तन के अन्वेषण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। ये सब घटनाएँ उपन्यास को नितान्त हल्के स्तर का बना देती हैं।'[1] यह कथन भ्रमपूर्ण है, समीक्षक ने उपन्यास की मूल-भावना को समझे बगैर उसमें गंभीर चिंतन-मनन को खोजना चाहा है और उसमें उसे असफलता मिली है। उपन्यास का व्यंग्य ही हमें गुरु-गंभीर समस्याओं के प्रति सचेत करता है। डॉ० भटनागर की दृष्टि में जख्मी का चरित्र और उसके गीत भगवतीबाबू के 'मन की उमस' हैं। इस मत से भी सहमत नहीं हुआ जा सकता। जख्मी के माध्यम से वर्मा जी ने कवियों (शायरों) की दुर्दशा, स्वाभिमान विहीनता एवं आर्थिक कठिनाइयों की ओर इंगित करना चाहा है। विभिन्न परिस्थितियों में पड़कर चरित्रों की वर्गगत विशेषताएँ उभरकर आ सकी हैं।

घटनाएँ बड़ी तीव्र गति से घटित हुई हैं। उनमें कार्य-कारण श्रृंखला बराबर बनी रही है। कला भारती सम्बंध-सूत्र है, जिसके माध्यम से पात्र मिलते हैं और विभिन्न नगरों का जायज़ा लेते हैं। कथानक सुसम्बद्ध और नियोजित है। उपन्यासकार ने उन्हीं पात्रों को अपनी कथायात्रा में सम्मिलित किया है जो उसे लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक हों, केवल लखनऊ के काफी हाउस, रेडियो स्टेशन, सुधाकर जी की बैठक आदि के चित्र स्थानीय अनुभवों की

1- हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य- डॉ० प्रेम भटनागर, पृ० 180-181

अभिव्यक्ति के लिए रखे गये हैं। इनका उपन्यास की मुख्य कथा से कोई सीधा सम्बंध नहीं है। परन्तु कला भारती के प्रसार के उद्देश्य से की गयी यात्रा के बीच प्रसंगवश उनका समावेश कर लिया गया है और साहित्यकारों पर व्यंग्य करने की दृष्टि से वह अत्यंत सफल एवं रोचक है। दिलवर किशन जख्मी के भाई-भाभी वाला प्रसंग भी अनावश्यक नहीं- उससे एक और तो जख्मी के पैतृक गुण मस्ती की पुष्टि हो जाती है तो दूसरी ओर शायरों के पारिवारिक जीवन की आर्थिक स्थिति की झाँकी भी मिल जाती है। जख्मी के भाई विपन्नावस्था में भी मौज-मस्ती का अनुभव करते हैं, वह कहते हैं -`वह बनिया साला उल्लू का पट्ठा है। वह सब मकानात मैं यतीम-खाने के नाम लिख दिये हैं, इस शर्त पर कि पहले हम दो यतीम--जी हाँ, हम लोग यतीम तो हैं ही-- इस मकान की आदमनी से पलेंगे, बाद हमारे दूसरे यतीमों के लिए यह जायदाद। देखूँ कैसे कुर्क कराए लेता है। जवाहर भाई ने जब से समाजवाद का ऐलान किया है, तब से मौज से रहते हैं और चैन की बंसी बजाते हैं।`[1] बिलकुल ऐसी ही फाकेमस्ती और खुशमिज़ाजी जख्मी में भी दिखती है।

`अपने खिलौने` में कुछ ऐसे स्थल भी हैं, जो कुछ लम्बे लग सकते हैं परन्तु उनकी रोचकता एवं कल्पनाशीलता व ने उन्हें स्मरणीय बना दिया है। उदाहरणस्वरूप मीना भारती का परिचय तथा जूते का इतिहास कुछ लम्बा तो अवश्य है, परन्तु मुख्य कथा में उनका महत्व-पूर्ण स्थान है और उन्होंने उपन्यासकार की व्यंग्य-क्षमता का सुन्दर परिचय दिया है।

`अपने खिलौने` एक हास्य-व्यंग्य प्रधान रचना है, किन्तु उसमें घटना-क्रम को इस प्रकार `फिट` किया गया है कि व्यंग्य के साथ-साथ उपन्यास पढ़ने का पूरा आनन्द मिलता है। इस उपन्यास में चरित्र भी अपने कार्य-व्यापार के द्वारा इस नाटकीयता से उभरकर आते हैं कि हमारे मन को गुदगुदाते हुए अपनी छाप छोड़ जाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि `अपने खिलौने` एक छोटा-सा सुसंगठित उपन्यास है और व्यंग्य के क्षेत्र में एक सफल प्रयोग है।

`भूले बिसरे चित्र` एक अत्यंत चर्चित एवं प्रसिद्ध कृति है। एक नायक न होने के कारण उसे नाटकविहीन उपन्यासों की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कथा-संगठन की दृष्टि से `भूले बिसरे चित्र` एक नवीन प्रयोग है। महाकवि कालिदास ने एक गौरवशाली वंश को

1- अपने खिलौने- पृ० 153

नायकत्व प्रदान करके एक अनुपम महाकाव्य की रचना बहुत पहले की थी, किन्तु उपन्यास में एक वंश की चार पीढ़ियों एवं दो परिवार की दो-दो पीढ़ियों के माध्यम से एक विशिष्ट कालावधि (सन् 1885 से 1930 तक) के चित्रण का प्रथम प्रयास 'भूले बिसरे चित्र' में किया गया है। यह उपन्यासकार की मौलिक देन है। एक विशाल समय-फलक पर विभिन्न जाति,सम्प्रदाय एवं वर्ग की बहुरंगी समस्याओं को समेट पाना अत्यन्त कठिन कार्य था, विशेषरूप से यह ऐसा समय था जिसमें राजनीतिक सरगर्मियाँ,सामाजिक मान्यताओं का परिवर्तन एवं धार्मिक सांस्कृतिक गतिविधियाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थीं। भारतीय जीवन के ऐसे संक्रमण काल के विभिन्न पहलुओं पर लेखनी उठाना बड़े साहस का कार्य था, वर्मा जी ने इस युग के चित्रण को जिस योजना से बाँधा है, वह सराहनीय है।

वस्तुत: उपन्यास का गठन इतनी कलात्मकता से हुआ है कि कथा-संगठन के अनेक सूत्र इसमें खोजे जा सकते हैं। किसी ने एक विशिष्ट युग की सांस्कृतिक,सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक झाँकी के रूप में उस सूत्र की कल्पना की है।[1] किसी ने जाति विशेष के एक परिवार विशेष को ही विषय का आधार माना है[2] और किसी ने 'पुरुषार्थ चतुष्टय' में कथा के मुख्य सूत्र को देखने का यत्न किया है। डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने लिखा है -'शायद यह कहना आज कुछ विचित्र लगे कि 'भूले बिसरे चित्र' की कथा पुरुषार्थ-चतुष्टय की कथा है, किन्तु यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि सारी कथा का विकास आर्थिक स्थिति के संदर्भ में हुआ है - आर्थिक स्थिति ने ही नए मोड़ लेकर धर्म, काम और मोक्ष(या त्याग -वृत्ति) की विविध भूमियों का उद्घाटन किया है। कथा के विस्तार में इसीलिए अनेक सामाजिक सांस्कृतिक और ~~एवं~~ राजनीतिक पहलू अपना रूप प्रत्यक्ष कराते हैं।'[3] उपर्युक्त सभी विचार अपनी -अपनी दृष्टि से उचित हैं। वर्मा जी का मुख्य उद्देश्य तद्युगीन भारत का व्यापक चित्र प्रस्तुत करना ही है। इसमें संयुक्त परिवार के विघटन,मध्यवर्ग के उन्नयन,सामन्तवाद के पतन, पूँजीवाद के विकास और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के यथार्थचित्र प्रस्तुत करना ही उपन्यासकार का अभीप्सित है। उसका प्रमुख माध्यम मुंशी शिवलाल का वंश बना है। इस व्यापक चित्र को प्रस्तुत करने के लिए छोटे-छोटे अनेक चित्रों(भूले बिसरे चित्र) को एक शृंखला में जोड़ा गया है।

1- भगवतीचरण वर्मा('चित्रलेखा' से 'सबहिं नचावत राम गोसाईं तक') पृ० 114

2- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० 482

3- आलोचना(त्रैमासिक पत्र) अंक-36, अप्रैल 1966, पृ० 207

मुंशी शिवलाल के परिवार के विभिन्न सदस्यों के सम्पर्क में, आनेवाले व्यक्तियों की अनेक प्रासंगिक कथाएँ इस वृहद् उपन्यास में आ गयी हैं। इन अनेक प्रसंगों को प्रसंग-पद्धति(एपिसोडिक ट्रीटमेन्ट) के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

'भूले बिसरे चित्र' पाँच खण्डों में विभक्त है। प्रश्न उठता है कि मुंशी शिवलाल के परिवार की चार पीढ़ियों की कथा पाँच खण्डों में क्यों रखी गयी है? खण्डों का विभाजन प्रत्येक पीढ़ी के अनुसार न होकर परिवर्तित जीवन-मूल्यों एक कथा के नवीन मोड़ों के आधार पर हुआ है। प्रथम खण्ड के अंत में पिता का आज्ञानुवर्ती ज्वालाप्रसाद पिता के प्रति वितृष्णा के भाव का अनुभव करने लगता है। उसका एकमात्र कारण है कि ज्वालाप्रसाद के पिता मुंशी शिवलाल अपने संयुक्त परिवार के हित में ज्वालाप्रसाद की तहसीलदारी का अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। द्वितिय खण्ड में संयुक्त परिवार से संघर्ष करने की, उससे मुक्ति पाने की कथा है। इस खण्ड के अंत में ज्वालाप्रसाद अपने संयुक्त परिवार से मुक्ति पाकर अपने नये सम्बंधों का निर्माण करते दीखते हैं। उन्होंने अपने परिवार से सम्बंध विच्छेद करके जैदेई से सम्बन्ध जोड़कर नया परिवार बनाया है, किन्तु तृतीय खण्ड के अंत में वह सम्बन्ध भी छिन्न-भिन्न हो जाता है और चौथे खण्ड में ज्वालाप्रसाद का परिवार बिल्कुल अपने में सिमट कर समाज की विभिन्न समस्याओं से उलझा दिखता है। पाँचवें खण्ड में इस परिवार की अंतिम पीढ़ी राष्ट्र एवं समाज की नवीनतम चेतना का साक्षात्कार करती दिखलायी पड़ती है। इसी प्रकार कथा के घटित होने के स्थान के आधार पर वहाँ के जीवन में भी अन्तर आता ~~ह~~ जाता है। कथा का प्रारम्भ अर्द्ध-ग्रामीण जीवन से होता है और अन्त नगरीय जीवन से होता है। प्रथम दो खण्ड (जिनका कार्यस्थल बड़े-बड़े शहर हैं) से इसीलिए कुछ अलग पड़ जाते हैं। प्रथम दो खण्ड में ग्रामीण और पारिवारिक समस्याएँ विभिन्न घटनाओं के माध्यम से उजागर हुई हैं। उनमें अंतिम तीन खण्डों में कार्यों एवं घटनाओं के प्रेरक तत्व बौद्धिक चिन्तन-मनन तथा वैचारिक संघर्ष बने हैं। इनमें उच्च शिक्षा प्राप्त पात्रों का झुकाव सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा राजनीति की ओर अधिक बढ़ता गया है। एक समीक्षक ने उचित ही लिखा है -'सामन्तशाही युग से कलयुग की ओर बढ़ती हुई कथा अन्तत: उससे भी आगे सत्याग्रह और स्वातन्त्र्य-युग की राजनीतिक परिणति को स्वीकार करती है, अत: घटनाओं से वैचारिकता की ओर की यह यात्रा स्वाभाविक ही है।'[1]

1- आलोचना-36, पृष्ठ-206-207

कहने का तात्पर्य यह हैकि `भूले बिसरे चित्र` का कथानक एक नहीं अनेक सूत्रों से आबद्ध है। उसमें कहीं भी विशृंखलता नहीं आने पायी है। इस उपन्यास में अनगिनत प्रसंग हैं, जो कहीं-न-कहीं मुख्य कथा से बंधे हैं। विशाल-युग के महत्वपूर्ण चित्रों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने में उपन्यासकार की प्रबन्ध-क्षमता दृष्टिगत होती हैं। `भूले बिसरे चित्र` के कुछ पक्षों की आलोचना करते हुए भी डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इसके कथा-संगठन की प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है -`कथा-संगठन की दृष्टि से भगवतीबाबू ने रोमांटिक यथार्थवाद का आश्रय लेते हुए उसे प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में सिद्धहस्तता प्रकट की है। उसमें घटनाएँ परस्पर शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। यह तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि भगवती बाबू कथा कहने में प्रवीण हैं।`[1] परन्तु विद्वान् समीक्षक ने भ्रमवश `भूले बिसरे चित्र` के संगठन में कुछ शैथिल्य भी देखा है -`वर्णन करने की शक्ति वर्मा जी में अच्छी है। साथ ही जिस प्रकार प्रेमचन्द के कई उपन्यासों में कथा का बिखराव पाया जाता है उसी प्रकार आलोच्य उपन्यास में भी विविध प्रसंग सुश्रृंखलित और परस्पर कसे हुए नहीं हैं। एक परिवार की चार पीढ़ियों की लम्बी कहानी में वर्मा जी ने स्वाभाविकता और रोचकता का ध्यान रखा है, किन्तु मेरी दृष्टि में कामरेड मारीसन, हिल्डा, मिसेज़ सिम, वीणा आदि, प्रभानाथ, विश्वम्भरदयाल, माताप्रसाद आदि से सम्बंधित कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें कम किया जा सकता था। अपने वर्तमान रूप में उनसे कथानक को अनावश्यक विस्तार, शिथिलता और पूर्वापर क्रम-भंग को प्रश्रय मिला है।`[2] विशेष ध्यातव्य है कि डॉ० वार्ष्णेय ने जिन पात्रों की चर्चा की है, वे `भूले बिसरे चित्र` के नहीं हैं; वे `टेढ़े मेढ़े रास्ते` के पात्र हैं। उनके कारण `भूले बिसरे चित्र` के कसाव में शैथिल्य आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। डॉ० वार्ष्णेय ने `भूले बिसरे चित्र` के कथा-संगठन की प्रशंसा क भी की है और निन्दा भी की है। एक अन्य स्थल पर उन्होंने लिखा है -`उपन्यास के अंत में व्यक्त किया गया दृष्टिकोण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। उपन्यास का मूल स्वर नियतिवाद और परिस्थितियों के चक्र का है, न कि संघर्षों से जूझनेवाले और आत्मोत्थान में रत प्रगतिशील व्यक्ति का। कथा के सभी सूत्रों को एक स्थान पर समेट कर रख देने का प्रयास भी उसमें दृष्टिगोचर होता है। किन्तु सभी सूत्रों को मन को समेटने वाला यह केन्द्र कृत्रिम प्रतीत होता है। प्रतीत होता है जैसे आस्थाहीन, सिद्धान्तच्युत गौरव और मूल्य-मर्यादा से रहित पात्रों से लदे-फँदे कथानक रूपी गुब्बारे की एकदम हवा निकल गयी हो।`[3] इस कथन से किसी प्रकार भी

1- माध्यम, वर्ष 2- अंक-6, अक्तूबर 1965, पृ० 88

2- वही-

3- वही-

सहमत नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि `भूले बिसरे चित्र` के ही नहीं, वर्मा जी के अन्य उपन्यासों के पात्र भी `नियति` और `परिस्थिति के चक्र` की अक्षुण्ण सत्ता को स्वीकार करते हुए स्थितियों से संघर्ष करना अपना कर्तव्य मानते हैं। इस तथ्य की चर्चा प्रस्तुत शोधप्रबंध में यथा-स्थान कई बार की गयी है। अत: `भूले बिसरे चित्र` की उपर्युक्त आलोचना का कोई ठोस आधार नहीं दिखता है।

वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों की तरह `भूले बिसरे चित्र` भी मुख्यत: वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। परन्तु वर्मा जी की यह विशेषता है कि वह वर्णन के साथ-साथ पात्रों के परस्पर वार्तालाप के द्वारा सम्पूर्ण स्थिति एवं दृश्य को साकार कर देते हैं। `भूले बिसरे चित्र` के अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जिन्हें बिना किसी विशेष परिवर्तन के एकांकियों का रूप दिया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप बिसनू और घुमुरू के प्रसंग के साथ-साथ जग्गू पहलवान और बुद्धसिंह की कुश्ती, ज्वालाप्रसाद, राधेलाल तथा उसके परिवार और छिनकी के बीच हुए संघर्ष, गंगाप्रसाद और संतो का प्रणय, अल्लामा वहशी एवं जटिलानन्द-शास्त्रार्थ, विद्या और उसके ससुराल वालों का संघर्ष आदि के प्रसंग ऐसी ही नाट्य-स्थितियों से ओत-प्रोत हैं। ऐसे ही अनेक स्थल `भूले बिसरे चित्र` में विद्यमान हैं। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए एक समीक्षक ने लिखा है -`घटनाओं का रोचक क्रम प्रस्तुत करना ही वर्मा जी को अभीष्ट नहीं है। उनका नाट्यबोध सर्वदा सजग और प्रखर रहा है। इसलिए वे घटनाओं का विवरण(नैरेशन) करके संतुष्ट नहीं हो सकते थे; उन्होंने तो लगभग प्रत्येक घटना को अपने में सम्पूर्ण, नाटकीय-संवेदना-समन्वित रूपक-खण्ड बनाया है।`[1] `भूले बिसरे चित्र` में एक स्थान पर पूर्वदीप्ति पद्धति का आश्रय लेकर कथा का विकास किया गया है। लाल रिपुदमनसिंह गंगाप्रसाद को उसके अनैतिक सम्बंधों के प्रति आगाह करने के लिए अपनी पत्नी और उसके प्रेमी की कथा सुनाते हैं। इसके अतिरिक्त पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण के लिए विश्लेषणात्मक शैली का भी प्रयोग इस उपन्यास में हुआ है।

उपन्यास के सुगठन में वर्मा जी का `आवश्यक का ग्रहण एवं अनावश्यक का परित्याग` का विवेक भी सहायक हुआ है। उन्होंने रोचक प्रसंगों को भी समुचित अनुपात में ही रखा है। अपने प्रिय पात्रों के अतिशय प्रदर्शन के मोह में वह नहीं पड़े हैं। डॉ० जगदीशचन्द्र माथुर का कथन द्रष्टव्य है -`हरेक प्रसंग एक नग है और लेखक ने जौहरी की भाँति संतुलित, बारीक और गति-पूर्ण नक्काशी की है। कुछ पात्र जो प्रधान नहीं है, जो मानो कथा-विकास की बाढ़ में

1- समसामयिक हिन्दी साहित्य :उपलब्धियाँ-भूले बिसरे चित्र-डॉ० जगदीशचन्द्र माथुर-पृ० 94

अनायास ऊपर आ जाते हैं, इतने हृदयग्राही हैं कि तबियत करती है कि लेखक उन्हें कुछ और समय के लिए हमारे साथ छोड़ देता। लेकिन लेखक है कि मोह को पास नहीं फटकने देता।'[1] इस संदर्भ में डॉ० माथुर ने संतो (सतवन्ती) का उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं -'सतवन्ती, जिसे ज्वालाप्रसाद(यहाँ गंगाप्रसाद होना चाहिए, क्योंकि संतो का प्रेम सम्बंध गंगाप्रसाद से होता है न कि ज्वालाप्रसाद से) की कामासक्ति ने विषय विलास के पथ पर अग्रसर कर दिया है, कलकत्ता के वैभवशाली अभिजातवर्ग में पहुँचकर जश्न और भोगविलास में सराबोर हो जाती है। उसके कारनामों और जिस हेय और अनैतिक समाज में वह रम गई उसे अनावृत करने में लेखक कुछ पन्ने रंग देता तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होता। ऐसा ही तो दस्तूर है। आखिर एक ऐसी मजेदार और चंचल कथा के लिए पूरी सामग्री यहाँ मौजूद थी जिसका उन लोगों पर जादू तुरन्त चल जाता है जो विकृत मनोवृत्तियों की सरेआम छीछालेदर में रस लेते हैं। किन्तु वर्मा जी सतवन्ती के प्रसंग को उसी क्षण तिलांजलि दे देते हैं जब कथा की प्रधान और मौलिक शोभा-यात्रा की विशाल प्रगति में उसका कोई तारतम्य नहीं रह जाता।'[2] वर्मा जी ने इस संयम और विवेक का परिचय इस उपन्यास में प्राय: सर्वत्र दिया है।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि 'भूले बिसरे चित्र' एक सधी हुई सुसंगठित कृति है। इसकी प्रबंधात्मकता, मौलिकता एवं समग्र प्रभावान्विति उपन्यासकार की महती उपलब्धि है। 'भूले बिसरे चित्र' में वर्मा जी ने एक ऐसे युग का व्यापक चित्र प्रस्तुत कर दिया है, जिसमें भारतीय समाज के जीवन-मूल्यों एवं राजनीतिक स्थिति में व्यक्ति को झकझोर देनेवाले परिवर्तन हो रहे थे। मुंशी शिवलाल के परिवार की स्वार्थपरता, सम्पत्ति-मोह एवं विलासिता से राष्ट्रीयता, चारित्रिक उत्थान एवं नव-चेतना तक की यात्रा अपने क्रमिक विकास के द्वारा पाठक के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। यही उपन्यासकार की वस्तु-योजना की सफलता है।

'वह फिर नहीं आई' उपन्यास वर्मा जी के 'राख और चिनगारी' शीर्षक कहानी-संग्रह की कहानी 'वह फिर नहीं आई' का विस्तृत रूप है। वर्मा जी ने कहानी में किंचित परिवर्तन करके तथा उसमें दार्शनिक व्याख्याओं और स्थानीय वर्णन का समावेश करके उसे उपन्यास का रूप प्रदान किया है। प्रस्तुत उपन्यास, उपन्यास के ही एक पात्र ज्ञानचन्द्र के द्वारा आत्म-कथात्मक शैली में लिखा गया है। वस्तुत: उपन्यास की कथा देश के विभाजन के परिणामस्वरूप

1- समसामयिक हिन्दी साहित्य :उपलब्धियाँ-भूले बिसरे चित्र-डॉ० जगदीशचन्द्र माथुर,पृ०94

2- समसामयिक हिन्दी साहित्य : उपलब्धियाँ- पृ० 94-95

विस्थापित एक दम्पति से सम्बंधित है। इनके जीवन की विषम परिस्थितियाँ उनके प्रेम पर प्रहार करने का प्रत्येक प्रयत्न करती हैं, किन्तु उनका प्रेम अपनी सम्पूर्ण निष्ठा एवं पवित्रता क ही परिचय देता है। इन्हीं दम्पति (रानी श्यामला एवं जीवनराम) की कथा में ज्ञानचन्द्र भी सम्मिलित हो जाता है। वह उनके जीवन के उतार-चढ़ाव का दृष्टा भी है और भोक्ता भी। इसीलिए ज्ञानचन्द्र की स्थिति इस उपन्यास में बड़ी विचित्र है। वह कभी तो श्यामला और जीवनराम की कथा का वक्ता दिखता है और कभी वह उनकी कथा में इस प्रकार जुड़ जाता है कि उपन्यास की कथा उसकी स्वयं की मनोव्यथा बन जाती है। श्यामला और जीवनराम के जीवन में ज्ञानचन्द्र की स्थिति तीसरे व्यक्ति की है और इस तरह उसे खलनायक होना चाहिए परन्तु ज्ञानचन्द्र जीवनराम का प्रतिद्वन्द्वी होकर भी खलनायक नहीं है - क्योंकि उसमें खलनायक के अवगुण नहीं दिखते। अपनी फर्म में से गबन करने के जुर्म में वह जीवनराम को जेल भिजवाता है, परन्तु श्यामला से उसके जीवन की मर्मकथा सुनकर वह पसीज उठता है और जीवननाम को रिहा करवा देता है। श्यामला और जीवनराम में तो मधुर-भावना का सम्बंध है- इसके साथ ही ज्ञानचन्द्र में भी भावना और संवेदना का तत्व प्रखर है - इसी भावना और संवेदना का आश्रय लेकर कथा विकसित हुई है। इसी तत्व से कथानक को गति मिली है। एक प्रणय कथा के प्रवाह में भावना के अविरल स्रोत की धारा का समन्वय सार्थक एवं मौलिक है।

इसी भाव प्रवणता के कारण उपन्यास के पात्रों का आत्मविश्लेषण दार्शनिकता की ओर मुड़ जाता है, परन्तु यह दार्शनिकता कहीं भी बोझिल नहीं हुई है। पात्रों की मन:स्थिति में वह अत्यंत स्वाभाविक बनकर समाविष्ट हुई है और इस प्रकार कथानक में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण के लिए उपन्यास में कानून, इतिहास, नैतिकता आदि की दार्शनिक व्याख्या वाला अंश देखा जा सकता है। जीवनराम को गिरफ्तार करवाकर ज्ञानचन्द्र अपने अन्दर एक उलझन में फँस जाता है, उसका अन्तर्द्वन्द्व इस प्रकार प्रारम्भ होता है -'जीवनराम को मैंने गिरफ्तार करवा दिया, क्योंकि मैं सशक्त हूँ, समर्थ हूँ, कानून मेरे साथ है।

कानून। हमारे वर्तमान सामाजिक संगठन का व्यंग्यात्मक उपहास। आखिर यह कानून है क्या ? इस कानून की सृष्टि किसने की, क्यों की ?'[1] ज्ञानचन्द्र का यह चिन्तन उसे अनेक दिशाओं में भटकाता है और उसी प्रवाह में इतिहास, नैतिकता एवं व्यापार की चर्चा आ

1- वह फिर नहीं आई- पृ० 45

जाती है। यह पूरा परिच्छेद चेतना प्रवाह पद्धति[1] (Stream of Consciousness) में रचित है। यह लघु उपन्यास औपन्यासिक शिल्प का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत करता है। उपन्यास का प्रारम्भ आत्मकथात्मक शैली से होता है, परन्तु दूसरे परिच्छेद से ही ज्ञानचन्द्र पूर्वदीप्ति पद्धति[2] के माध्यम से अपनी कथा सुनाने लगता है। उपन्यास के मध्य में श्यामला भी जीवनराम से अपने विद्रोह की कहानी इसी पद्धति का सहारा लेकर सुनाती है। इसके साथ-साथ पात्रों की मानसिक उथल-पुथल का चित्रण करने के लिए विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग भी किया गया है।

'वह फिर नहीं आई' एक लघु उपन्यास है, अतः उसके गठन के लिए उपन्यासकार को विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा है। उपन्यास में तीन ही पात्र हैं और कथा उन्हीं के आस-पास घूमती रहती है। फिर भी उसमें इतिवृत्त का क्रमिक विकास नहीं हुआ है। ज्ञानचन्द्र की चेतना में जिस प्रकार घटनाएँ उभरती हैं, उन्हें उसी रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है परन्तु उनमें पाठक की उत्सुकता एवं कौतूहल बनाए रखने की पर्याप्त क्षमता है।

'सामर्थ्य और सीमा' में वर्मा जी ने 'प्रकृति पर विजय पाने के अटूट प्रयत्नों' के युग में मनुष्य की सामर्थ्य और सीमा को मापने का यत्न किया है। वर्मा जी की कल्पनाशीलता की सराहना करनी पड़ती है कि एक नितांत असंभव-सी दिखनेवाली सत्य घटना को आधार बनाकर एक उपन्यास की रचना कर डाली। कुमाऊं गजेटियर में एक रोमांचकारी घटना का जिक्र आया है, वह इस प्रकार है - '16 से 19 सितम्बर(सन् 1880 ई०) तक लगातार वर्षा के बाद भयंकर विस्फोट हुआ - सारी जमीन हिल गयी। विशाल देवदार के वृक्ष तिनकों की तरह गिरने लगे। बड़ी-बड़ी चट्टानें लुढ़कने लगीं। भूचाल-सा आया। यह भूकंप था या प्रकृति का प्रकोप। हजारों व्यक्ति काल के गर्त में समा गये। मंदिर डोलने लगा। विक्टोरिया

---

1. "Every definite image in the mind is seeped and dyed in the free water that flows round it. The significence, the value of the image is all in this helo or penumbra that surrounds and escarts it....Consciousness does not appear to itself chopped up in bits ....It is nothing jointed...It flows ...Let us call it the stream of thought of consciousness or of subjective life."__ Principles of Psychology'__William James, Page-86.

2- इसमें उपन्यासकार पात्र की वर्तमान दशा एवं परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए उसका पूर्ववृत्त प्रस्तुत करता है।

होटल का बहुत बड़ा भाग ताल की गोद में समा गया ।'[1] महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' ने लिखा है -'प्रकृति रही दुर्जेय पराजित हम सब थे भूले मद में' इसी दुर्जेय प्रकृति (जिसने किसी समय नैनीताल के जीवन को तहस-नहस कर डाला था) और दम्भी मनुष्य को लक्ष्य करके वर्मा जी ने अपने उपन्यास व के लिए एक मौलिक एवं सुन्दर विषय का चयन किया है । दम्भी मनुष्य को साकार करने के लिए उपन्यासकार ने इस उपन्यास में विश्वविख्यात इंजीनियर,पूँजीपति, डिज़ाइनर, पत्रकार एवं कवि का चयन किया है । उनके दम्भ एवं शक्ति की सहायता से एक मंत्री एक ऐसे स्थान का विकास करने की योजना बनाते हैं जो अपनी प्राकृतिक छटा में अनुपम है, परन्तु प्रकृति इन व्यक्तियों के हस्तक्षेप एवं दम्भ को सहन नहीं कर पाती और ऐसी विनाश लीला करती है, जिसमें इन व्यक्तियों का दम्भ ही नहीं वे स्वयं काल-कवलित हो जाते हैं । इतनी सूक्ष्म कथावस्तु पर उपन्यास का भवन निर्मित हुआ है और उसकी कालावधि भी अत्यंत संक्षिप्त है । इतने कम समय के छोटे से घटना-क्रम को एक बड़े उपन्यास में परिवर्तित करने के लिए उपन्यासकार को एक निश्चित योजना और क्रम का आश्रय लेना पड़ा है । उपन्यास के प्रारम्भ में प्रत्येक प्रमुख पात्र का विस्तृत परिचय करवाया गया है, मध्य में क्रमश: कवि,पत्रकार, आर्टिस्ट(डिज़ाइनर), उद्योगपति एवं इंजीनियर के प्रति रानी मानकुमारी के रागात्मक सम्बंधों का विकास हुआ है और अंत में इन सब सक्षम एवं सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के पारस्परिक विद्वेष, संघर्ष एवं अभूतपूर्व बाढ़ में सबकी जल-समाधि से होता है । उपन्यास के सभी पात्र उच्च बौद्धिक एवं सामाजिक स्तर के हैं, अत: उनके पारस्परिक वार्तालाप एवं वाद-विवाद के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं और देश की राजनीतिक स्थिति के विवेचन का अवसर भी उपन्यासकार को मिल व गया है । युग-चित्रण की दृष्टि से उपन्यास अत्यंत सफल है । समाज के विभिन्न वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों को एक स्थान पर उपस्थित करके उपन्यासकार ने युग का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत कर दिया है ।

'सामर्थ्य और सीमा' में केवल एक ही कथा ही है । सिगनल-मैन नवलसिंह और स्टेशन मास्टर मिट्ठनलाल का समावेश उपन्यास के घटना-स्थल सुमनपुर के रेलवे स्टेशन सुमना के के वातावरण -निर्माण के लिए किया गया है, उनके परिचय को प्रासंगिक कथा की संज्ञा नहीं दी जा सकती ।[2] अनावश्यक विस्तार की प्रवृत्ति इस उपन्यास में कहीं नहीं दिखती । पात्रों के

1- नवभारत टाइम्स(दैनिक) 13 मई 1975 में श्री गिरधारीलाल पाहवा के लेख कुमाऊं का रत्न 'नैनीताल' से उद्धृत ।

2- डॉ० कुसुम वार्ष्णेय ने इसे प्रासंगिक कथा माना है ।'भगवतीचरण वर्मा ('चित्रलेखा' से 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' तक) पृ० 129

वाद-विवाद के स्थल लम्बे अवश्य हैं परन्तु वे सुशिक्षित एवं बौद्धिक पात्रों की विशेषता प्रकाशित करते हैं। इस दृष्टि से वे सटीक एवं समीचीन हैं। उन्हें अरोचक,बोझिल एवं आरोपित कदापि नहीं कहा जा सकता।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है उपन्यास का कथानक अत्यंत संक्षिप्त परन्तु सुनियोजित है। बीच-बीच में पात्रों के विस्तृत वाद-विवाद के कारण उपन्यास के गठन में शैथिल्य आ गया है। घटनाओं की न्यूनता एवं विचारों की अधिकता के कारण ही ऐसा हुआ है। परन्तु 'शिथिल गठन के उपन्यास टेकनीक के कच्चेपन का परिचायक नहीं है, क्योंकि शिथिल गठन के उत्कृष्ट उपन्यासों में भी एक विशेष प्रकार की एकता रहती है।'[1] 'सामर्थ्य और सीमा' में यह एकता सर्वत्र दृष्टिगत होती है। उपन्यास-रचना के उद्देश्य के प्रति उपन्यासकार सदैव सचेत रहा है और उपन्यास की समाप्ति पर उसके संश्लिष्ट प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। वस्तुत: उपन्यास घटना-प्रधान न होकर विचार-प्रधान है और विचारों को कथानक के साथ कुतूहलपूर्ण एवं रोचक ढंग से गूंथने में उपन्यासकार को पूरी सफलता मिली है। प्रबुद्ध पाठक के लिए उपन्यास में रमे रहने की भरपूर सामग्री है।

वर्मा जी के कुछ उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में आकस्मिक घटनाओं का बाहुल्य नहीं है। प्रलयकारी बाढ़ की रोमांचक घटना की भूमिका भी उपन्यासकार बहुत पहले से बांधता रहा है। मेजर नाहरसिंह की भविष्यवाणी और देवलंकर की आशंका से उसका पूर्वाभास हो जाता है। तथापि उसकी संघटना अपरिमित कुतूहल का सृजन करती है और आकस्मिक घटना का प्रभाव डालती है।

उपन्यास अधिकांशत: वर्णनात्मक शैली में ही लिखा गया है किन्तु सुमना स्टेशन, सुमनपुर के आसपास के भूखण्ड और यशनगर के चित्रण में उपन्यासकार ने विवरण और दृश्य-विधान शैली का सफल एवं समन्वित प्रयोग किया है। इसी प्रकार उपन्यास के अंत में भीषण वर्षा एवं बाढ़-प्रकोप दृश्य-विधान शैली के द्वारा साकार हो गये हैं। मंसूर और मकोला के पारिवारिक जीवन का परिचय विश्लेषणात्मक शैली में दिया गया है। ये दोनों व्यक्ति जब रानी मानकुमारी से प्रभावित होते हैं, तो उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन में कुछ अभाव खटकने लगते हैं। इसी अनुभव के क्रम में उनका अन्तस अपने जीवन का विश्लेषण करने लगता है और पाठक इनके पारिवारिक जीवन और व्यावसायिक जीवन के विभिन्न तथ्यों से परिचित हो

1- हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन-डॉ० एस०एन० गणेशन, पृ० 154

जाता है। मेजर नाहरसिंह के कुछ कथन प्रलाप-शैली में लिखे गये हैं जो उनके विचित्र एवं सनकी स्वभाव की अनुकूल है। इस प्रकार 'सामर्थ्य और सीमा' वर्मा जी के उपन्यासों में एक अलग ढंग का उपन्यास है। बड़ी-बड़ी कालसीमा और असंख्य घटनाओं को आधार बनाकर लिखे जाने-वाले उपन्यासों के विपरीत यह सर्वाधिक संक्षिप्त समयावधि एवं घटनावलि पर आधारित उपन्यास है। विज्ञान की रोमांचकारी प्रगति के युग में व्यक्ति की सामर्थ्य (प्रकारान्तर से विज्ञान व टेक्नॉलॉजी की सामर्थ्य) पर प्रश्न चिन्ह लगाने का साहसपूर्ण एवं मौलिकतापूर्ण प्रयास वर्मा जी ने किया है। वर्मा जी के विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं, किन्तु अपनी विचारों को जिस ढंग से सजाया गया है, वह अवश्य प्रश प्रशंसनीय है।

'थके पाँव' में 'भूले बिसरे चित्र' की भाँति एक कायस्थ परिवार की तीन पीढ़ियों के द्वारा मध्यमवर्ग की कष्टगाथा गायी गयी है। परन्तु यह उपन्यास आकार में ही बौना नहीं है, शिल्प की दृष्टि से भी कोई नवीनता इस उपन्यास में नहीं दिखती। यद्यपि इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय परिवारों के बड़े मार्मिक और अंतरंग चित्र देखने को मिलते हैं, पाठक की संवेदना को झंकृत करने की शक्ति भी इस उपन्यास में पर्याप्त है, तथापि वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इस उपन्यास में कुछ छिद्र रह गये हैं।

'थके पाँव' में एक परिवार की ही विस्तृत कथा है, किन्तु एक परिवार की तीन पीढ़ियों ~~परिवार~~ की परिस्थितियों में विशेष अंतर नहीं आता है। इसीलिए इसमें पाठक का मन विशेष रस नहीं ले पाता। रामचन्द्र, केशव और मोहन तीनों क्लर्की करते हैं, तीनों की पत्नियाँ कुशल गृहण्णि गृहणी हैं, तीनों को पुत्री या बेटी के दहेज की चिंता परेशानी में डाल देती है। केशव और मोहन को समानरूप से बेकारी की समस्या का शिकार बनना पड़ता है। इसी प्रकार केशव का भाई सुरेश तथा मोहन का भाई किशन और बहन माया संयुक्त परिवार के मोह के बंधन काट अपने वर्ग से ऊपर उठने का प्रयास करते हैं। परिस्थितियों की यह पुनरावृत्ति मध्यमवर्ग की आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों की कथा को सघन रूप में भले ही प्रस्तुत करे, किन्तु इससे उपन्यास में अनावश्यक विस्तार हुआ है। इन्हीं समस्याओं को उपन्यासकार एक पीढ़ी के द्वारा अधिक प्रभावशाली एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत कर सकता था। उपन्यास में इस पुनरावृत्ति से एकरसता भले ही आयी हो, परन्तु इसकी प्रबंधात्मकता घनीभूत हुई है।

उपन्यास की रचना फ्लैश बैक पद्धति में हुई है। कथानक का प्रारम्भ जीवन में अनवरत संघर्ष करते हुए केशव के आत्मचिन्तन से होता है। जीवन की विषम परिस्थितियों से थके-टूटे

केशव के मस्तिष्क में उसका विगत जीवन चलचित्र की भाँति उभरता चला गया है। उपन्यासकार ने केशव की चेतना में प्रविष्ट होकर उसके जीवन की क्रमबद्ध झाँकी प्रस्तुत की है। डॉ० कुसुम वार्ष्णेय ने उपन्यास के शिल्प को त्रुटिपूर्ण बताते हुए लिखा है -'उपन्यास में फ्लैश बैक पद्धति का उपयोग हुआ है। उसमें भी एक प्रकार की त्रुटि है। किशन के बम्बई जाने तक की सारी घटनाएँ केशवचन्द्र के मस्तिष्क में स्मृति के रूप में उभरती हैं, किन्तु इसके बाद लेखक कथा का सूत्र अपने हाथ में ले लेता है। फिर बाद में उपन्यास के कुछ अवशिष्ट पृष्ठों पर कथा का सूत्र केशवचन्द्र के हाथ में आ जाता है।'[1] आलोचिका का यह आरोप समीचीन प्रतीत ह नहीं होता क्योंकि इस प्रकार का कोई अंतर उपन्यास में नहीं दिखता। उपन्यास के प्रत्येक परिच्छेद के प्रारम्भ में उपन्यासकार 'केशव सोच रहा था', 'केशव ने अनुभव किया', 'केशव जानता है', आदि वाक्यांश जोड़कर केशव की चिन्तन धारा की ओर इंगित कर देता है। उपन्यास के प्रारम्भ में से अन्त तक उपन्यास के प्रत्येक परिच्छेद का प्रारम्भ केशव के विचार प्रवाह से होता है और उसके बाद उसके परिवार की विभिन्न घटनाएँ एक-के-बाद-एक उभरती चली जाती हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि उपन्यास की फ्लैश बैक पद्धति में कोई त्रुटि नहीं है। सम्पूर्ण उपन्यास यथार्थवादी है, किन्तु अंत आदर्शोन्मुख हो गया है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से उपन्यास प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों की श्रेणी में पहुँच गया है, उसमें कोई नवीनता नहीं है। 'थके पाँव' वर्मा जी का एक सामान्य कोटि का उपन्यास है।

'रेखा' काम समस्या पर आधारित एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। वर्मा जी के उपन्यासों की एक महत्वपूर्ण समस्या- प्रेम को, यौन-सम्बंधों से जोड़कर एक नवीन परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार 'रेखा' के विषय में कोई नवीनता नहीं है। वर्मा जी के उपन्यासों में ही नहीं, सम्पूर्ण ~~सा~~ हिन्दी उपन्यास-साहित्य में इस विषय पर खूब लिखा गया है। फिर भी नारी-मनोविज्ञान को जिस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों से जोड़कर इस उपन्यास में समाविष्ट किया गया है - उसी में उपन्यासकार का कौशल छिपा है। 'प्रेम का रूप क्या है? वह आत्मिक सम्बंध है या शारीरिक सम्बंध? अथवा आत्मा और शरीर के समान आकर्षण में उसका अस्तित्व है' - यही रेखा का प्रतिपाद्य है और इसी क्रम से 'रेखा' शीर्षक उपन्यास का कथानक निर्मित हुआ है। प्रेम की इस समस्या को रेखा नामक

1- भगवतीचरण वर्मा ("चित्रलेखा" से "सबहिं नचावत राम गोसाईं" तक) डॉ० कुसुम वार्ष्णेय, पृ० 193

युवती को आधार बनाकर रखा गया है, अत: उपन्यास का चरित्र-प्रधान होना स्वाभाविक है। उपन्यास का आरम्भ भी रेखा के चरित्र-विश्लेषण से ही हुआ है, परन्तु शीघ्र ही वर्मा जी रेखा की स्वभावगत विशेषताओं को परिस्थितियों से जोड़कर घटना-क्रम को महत्व देना नहीं भूलते। दूसरों की आकृति समझकर उन पर अपना सौन्दर्य बिखेरनेवाली रेखा जब प्रोफेसर प्रभाशंकर के समक्ष स्वयं आकृति ही नहीं, केवल `नाम` बनकर रह जाती है, तो वह अपने आपको अत्यधिक अपमानित अनुभव करती है। इसके बाद प्रोफेसर प्रभाशंकर की दृष्टि उस पर पड़ने और दृष्टि के चार-पाँच सैकेण्ड तक जमने की घटना से कथानक में कुतूहल उत्पन्न होता है और उसमें गति आती है। धीरे-धीरे रेखा का सम्बन्ध प्रोफेसर प्रभाशंकर से घनिष्ठतर होता जाता है और रेखा की कहानी में प्रभाशंकर के सम्मिलित होने से केन्द्रीय कथा का निर्माण होता है।

रेखा और प्रभाशंकर के चरित्र को विकास देने के लिए तथा उनकी चारित्रिक विशेषताओं या दुर्बलताओं को प्रकाशित करने के लिए उपन्यासकार देवकी, दाताराम और रामशंकर की प्रासंगिक कथा की अवतारणा करता है। जो उपन्यास के अन्त तक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निबाहती है। रत्ना चावला, शीरीं चावला और निरंजन कपूर की कथा प्रभाशंकर और रेखा के शील निरूपण में भी सहायक होती है और उच्चवर्गीय समाज की काम-विकृतियों का उद्घाटन करने की दृष्टि से भी उसका उपयोग किया गया है। इसी प्रकार ज्ञानवती एवं शिवेन्द्र घीर की कथा के माध्यम से रेखा की काम-विकृति अधिक उभरकर आ सकी है तथा ज्ञानवती के प्रेम में प्रेम के निष्काम सेवा और लगन वाले रूप को भी अभिव्यक्ति मिली है। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर, शशिकान्त,यशवन्तसिंह रेखा के `शरीर की भूख` को प्रदीप्त करने में सहायक हुए हैं और अपना काम समाप्त करके उपन्यास के पृष्ठों से अन्तर्धान हो जाते हैं।

उपन्यास की अल्पकालिक अवधि में ऐसी-ऐसी सामान्य और असामान्य घटनाएँ घटित होती हैं और इतनी तेजी से घटित होती हैं कि रेखा के जीवन में आमूल परिवर्तन ही नहीं हो जाता, वह विक्षिप्तावस्था तक पहुँच जाती है। कई घटनाएँ अप्रत्याशित एवं आकस्मिक रूप से भी घटित हुई हैं। उनसे कथानक में गति आई है और उसे नई दिशा भी मिली है। उदाहरण के लिए एक घटना को लिया जा सकता है। बम्बई में प्रभाशंकर की आकस्मिक अस्वस्थता से कथानक में एक नया मोड़ आता है। अभी तक रेखा विभिन्न पुरुषों से शारीरिक सम्बंध तो स्थापित करती थी, किन्तु उसकी आत्मा उससे सहयोग नहीं करती थी। परन्तु प्रोफेसर की बीमारी के प्रसंग में रेखा का परिचय योगेन्द्रनाथ से होता है और उसके जीवन में एक बहुत

बड़ा परिवर्तन होता है । उसे अनुभव होता है कि योगेन्द्रनाथ ऐसा पहला व्यक्ति है जिससे उसकी आत्मा और शरीर दोनों आकर्षित हुए है और यहीं से उपन्यास के कथानक का `क्लाइमेक्स` प्रारम्भ होता है । उपन्यास के अंत में तो घटनाएँ बहुत तेजी से घटित होती हैं । उनके गतिशील संक्षिप्त विवरण और दृश्यीकरण ने कथानक के मनोनुकूल भावावेग(Tempo) को नियंत्रित करने में विशेष सहायता प्रदान की है ।

उपन्यास के अंत में रेखा पागल हो जाती है किन्तु यह अकारण और अचानक नहीं होता । प्रथम बार रामशंकर को देखकर रेखा शारीरिक अतृप्ति का अनुभव करती है और रामशंकर के विदेश जाते समय यह अतृप्ति मानसिक विकार का सूत्रपात कर जाती है । उपन्यासकार लिखता है -`और रेखा हँस रही थी - हँस रही थी ।`[1] यह काम विकृति क्रमश: मानसिक विकृति का रूप धारण करती जाती है - इसका आभास पोलिश एम्बेसी की पार्टी में भी मिलता है ।[2] और अंत में रेखा `आत्मा `तथा `शरीर और आत्मा ` के द्वन्द्व में भटकती हुई पूर्णरूपेण अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है । स्पष्ट है कि `रेखा ` का कथानक पूर्णरूपेण सुनियोजित है, किन्तु उपन्यासकार का रचना-कौशल और कला की प्रौढ़ता उसका आभास नहीं होने देती ।

`रेखा` में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, विचार-विमर्श एवं तर्क-वितर्क के स्थल पर्याप्त मात्रा में हैं, परन्तु उनसे कथानक के प्रवाह में तनिक भी बाधा नहीं पड़ी है । आदि से अंत तक एक गति, एक लय और एक प्रवाह है जो पाठक को अपने साथ रमाए रखता है, बहाए लिए जाता है ।

`रेखा ` उपन्यास का कथानक मनोवैज्ञानिक है किन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाँति उसकी शैली शुद्ध विश्लेषणात्मक नहीं रही है । जहाँ उपन्यासकार को आवश्यक प्रतीत हुआ है वहीं उसने मनोविश्लेषण का आश्रय लिया है, अधिकांशत: तो उसने पात्रों की अन्तर्बाह्य प्रेरणाओं का वर्णन ही किया है । वर्मा जी उपन्यासकार के रूप में सदैव रेखा और अन्य पात्रो के साथ लगे रहे हैं । मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के समय वर्मा जी उनके अन्तस में प्रविष्ट होकर उनका विवरण देते रहे हैं । वर्मा जी के अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में भी आसन्न लेखकत्व है । एक समीक्षक ने लिखा है -`उपन्यास में रेखा के `काम ` का चित्रण प्रधान है ।

1- रेखा- पृ0 85

2- वही- पृ0 257 से 260

काम के तल में पग-पग पर जिस ज्वलनशील रक्तशोषी मानसिक पीड़ा का अनुभव रेखा करती रही होगी, उस मनोविज्ञान को उपन्यास में स्थान कम मिला है । यहाँ पात्र की मनोदशा, मनोदशा के परिणामस्वरूप उत्पन्न लक्षणों तथा लक्षणों के कार्य-कारण सम्बन्धों को स्पष्ट करने की अपेक्षा, लक्षणों की स्थूल पुनरावृत्ति पर अधिक बल दिया गया है । संक्षेप में, 'रेखा' का कथ्य तो मनोवैज्ञानिक है, किन्तु उसका निरूपण वैज्ञानिक विधि से नहीं हो पाया है ।'[1] इस कथन से पूर्णतया असहमत तो नहीं हुआ जा सकता । जब उपन्यास का कथ्य मनोवैज्ञानिक हो तो उसका निरूपण भी मनोवैज्ञानिक रीति से ही होना चाहिए । वर्मा जी ने इस उपन्यास में ऐसा प्रयत्न न किया होगा, ऐसा नहीं लगता ; परन्तु अपनी कथा-शैली से पूर्णरूपेण मुक्ति पाना उनके लिए सम्भव नहीं हो पाया है किन्तु इससे मनोवैज्ञानिक समस्या के प्रतिपादन में कोई विशेष शैथिल्य एवं त्रुटि नहीं आई है । कथा में वर्णन और विश्लेषण के समन्वय से रोचकता आई है, जिससे उपन्यास विशेष पाठक-वर्ग तक सीमित न रहकर सर्वरंजक बन गया है ।

'सीधी सच्ची बातें' युगीन चित्रण की दृष्टि से लिखा गया उपन्यास है और इसे 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' तथा 'भूले बिसरे चित्र' की श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी कहा जा सकता है। वर्मा जी का अन्तिम उपन्यास 'प्रश्न और मरीचिका' इस परम्परा की अन्तिम कड़ी है । वर्मा जी के इन चारों उपन्यासों में पनोरमिक उपन्यास (Panoramic novels) की सी विशेषताएँ मिलती हैं । पनोरमिक उपन्यास की व्याख्या करते हुए एक समीक्षक ने लिखा है - "समाज के विविध पहलुओं का विशद एवं सर्वांगीण चित्रण करते हुए अत्यंत विस्तृत पटभूमि पर लिखित कुछ उपन्यास----- जो पात्रों की संख्या, वातावरण की विस्तृति, कथानक के गठन आदि बातों में किसी तरह की सीमा के अन्दर नहीं समाते । इनको पनोरमिक उपन्यास कहा जा सकता है ।'[2] इस व्याख्या के अनुसार वर्मा जी के उपर्युक्त चारों उपन्यासों में समाज के विविध पहलुओं का विशद चित्रण किया गया है, इनमें पात्रों की संख्या भी अत्यधिक है, (टेढ़े मेढ़े रास्ते - लगभग 89 पात्र, भूले बिसरे चित्र- लगभग 111 पात्र, सीधीसच्ची बातें-लगभग 46 पात्र तथा प्रश्न और मरीचिका-लगभग 60 पात्र) देश-विदेश के विभिन्न क्षेत्रों का वातावरण इसमें आ गया है और एक काल-सीमा की समस्याओं तथा मूल्यों के साथ-साथ कहीं-कहीं चिरंतन मूल्यों की भी अभिव्यक्ति मिली है । वर्मा जी के उपन्यासों में वातावरण के साथ-साथ कथा

1- हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ - डॉ० शशिभूषण सिंहल, पृ० 234

2- हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन-डॉ० एस० एन० गणेशन, पृ० 140

तत्व भी अत्यधिक सशक्त रहता है, अतः इनके उपन्यासों को कथा सहित पनोरमिक उपन्यास कहा जाना चाहिए। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' में ऐसे अनेक प्रमुख पात्र हैं, जिनके साथ-पृथक्-पृथक् स्थान का वातावरण चित्रित हुआ है, परन्तु 'सीधी सच्ची बातें' और 'प्रश्न और मरीचिका' में मुख्य पात्र अथवा नायक एक है जिसके यत्र-तत्र घूमते रहने से विभिन्न स्थानों की समस्याएँ और वातावरण जीवंत हो सका है।

'सीधी सच्ची बातें' का नायक जगतप्रकाश एक सुशिक्षित नवयुवक है, उसका विवाह नहीं हुआ है। अतः परिवार की कोई जिम्मेदारी उस पर नहीं है। एक बहन है जो इतनी सक्षम और आत्मविश्वास युक्त है कि वह भाई की सहायता भले ही कर दे, भाई की स्वच्छंदता में बाधा नहीं बनती। इसीलिए जगतप्रकाश अपनी बहन के प्रति पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा रखते हुए भी उसकी चिन्ता से मुक्त देश-विदेश का चक्कर लगाता है। उसके इसी यायावर-जीवन में अनेक व्यक्ति और स्थल आते जाते हैं और वह जीवन व जगत के निरन्तर ~~ह्रासो-मुखी~~ ह्रासोन्मुखी मूल्यों को भोगता हुआ ऐसी निराशा-एवं कुंठा से भर उठता है कि 'नर्वस ब्रेकडाउन' का शिकार होकर अंततः अपनी इहलीला समाप्त कर देता है। इस प्रकार 'सीधी सच्ची बातें' पनोरमिक उपन्यासों की 'वैविध्य के बीच एकता' की अपेक्षा को भी पूरा करता है। प्रस्तुत उपन्यास दो खण्ड में विभक्त है। पहले खण्ड में जगतप्रकाश के न चाहते हुए भी राजनीतिक में फँसते जाने की कथा है और दूसरे खण्ड में कम्युनिज्म की विधिवत् दीक्षा लेने के पश्चात् (राजनीति में सक्रिय सहयोग देने के उद्देश्य से) राजनीति से अरुचि और उसके प्रति अनास्था हो जाने की कथा है। इसी प्रकार प्रेम के क्षेत्र में प्रथम खण्ड में जगतप्रकाश को सफलता ही समफलता मिलती है तथा स्त्री की ममता व भावना उसे बार-बार अभिभूत करती है और द्वितीय खण्ड में ममता का आवरण हटता दीख पड़ता है। उसे हर जगह सब से निराश होना पड़ता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रथम खण्ड जगतप्रकाश की भावना और आस्था का खण्ड है और द्वितीय खण्ड उनके टूटने और बिखरने का है। 'सीधी सच्ची बातें' में एक ओर देश-विदेश तक व्याप्त राजनीतिक गतिविधियों का व्यापक चित्रण हुआ है तो दूसरी ओर मानव जीवन की चिरंतन समस्या प्रेम को विविध पहलुओं से देखा गया है। इन दोनों क्षेत्रों में उपन्यास काल और देश की सीमाओं में बँधकर भी उपन्यासकार की व्यापक दृष्टि का परिचय देता है।

इस उपन्यास में भारतीय स्वतंत्रता -संग्राम को द्वितीय विश्वयुद्ध के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का नायक जगतप्रकाश स्वयं एक सैनिक के रूप में इसमें भाग लेता है और वहाँ उसे युद्ध की विभीषिका का अनुभव होता है। इस विनाश-लीला में उसका मन

चीत्कार कर उठता है और वह सोचता है कि गाँधी की अहिंसा का मार्ग ही उचित है। इस प्रसंग में यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि यहीं जगतप्रकाश के मन में विश्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या `युद्ध या शान्ति` प्रश्नचिन्ह बनकर उपस्थित होती है। दूसरी ओर सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत व्यक्ति और समाज की विभिन्न कुंठाओं और विकृतियों का चित्रण वर्मा जी ने विभिन्न प्रासंगिक कथाओं के द्वारा किया है। उच्च वर्ग की अहम्मन्यता एवं वैयक्तिक मनोविकार, शिक्षण क्षेत्र की अनैतिकता, मनुष्य की स्वार्थपरता एवं धनलिप्सा, कामकुंठा आदि कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जो भारतीय समाज में चित्रित होकर भी विश्व के हर कोने में अपने अस्तित्व की पूर्ण संभावना रखती हैं।

`सीधी सच्ची बातें` में सामाजिक परिवेश का अंकन अधिकांशतः विभिन्न पात्रों के जीवन में घटित घटनाओं और स्थितियों के माध्यम से हुआ है और राजनीतिक परिवेश का अंकन उपन्यास के राजनीति में रुचि रखने वाले पात्रों के वाद-विवाद एवं उनके चिन्तन-मनन के द्वारा हुआ है। पात्रों के राजनीतिक वाद-विवाद और राजनीतिक घटनाओं का तिथिक्रम युक्त विवरण कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक विस्तृत हो गया है और उसने कथा के प्रवाह को मन्द कर दिया है। इससे उपन्यास की रोचकता को भी क्षति पहुँची है। मुंशी प्रेमचन्द के `गोदान` पर जिस कथा-शैथिल्य का आरोप लगाया जाता है, कुछ-कुछ वैसी ही स्थिति `सीधी सच्ची बातें` की भी है। इसमें राजनीतिक विवरण ठीक से पच नहीं पाया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास का कथानक सुनियोजित तो है, क्योंकि उपन्यास की हर घटना का दृष्टा जगतप्रकाश है। कथा-क्रम को इस प्रकार आयोजित किया गया है कि वह जगतप्रकाश के चारों ओर घूमता रहता है किन्तु कथानक में पर्याप्त कसाव नहीं है। कार्य-कारण श्रृंखला तो बनी रहती है परन्तु राजनीतिक विवरणों की लम्बाई के कारण कथा का क्रम भंग हो जाता है।

जहाँ तक उपन्यास की यथार्थता का प्रश्न है, `सीधी सच्ची बातें` में वर्मा जी के जीवन का अगाध अनुभव व्यक्त हुआ है। उसमें भारतीय जीवन के वही क्षेत्र समाविष्ट हुए हैं, जिनसे वर्मा जी का साक्षात् परिचय हुआ है, अतः चित्रण में पर्याप्त स्वाभाविकता एवं सच्चाई आ सकी है।

भारत के विशाल परिवेश को समेटने के लिए उपन्यासकार ने `प्रसंग पद्धति` का आश्रय लिया है। विभिन्न क्षेत्रों से सम्बंधित व्यक्ति किसी विशेष प्रसंग में जगतप्रकाश से मिलते हैं, अथवा जगतप्रकाश घटना-स्थल पर पहुँच जाता है और उस समस्या अथवा पहलू का सम्पूर्ण चित्रण हो जाने के उपरांत वह प्रसंग पीछे छूट जाता है। इसके पश्चात् कथानक आगे बढ़ जाता

है इसीलिए उपन्यास के अंत में विभिन्न कथाओं को समेटने की आवश्यकता नहीं पड़ी है। कथानक एक ही गति से सम्पूर्ण उपन्यास में चलता रहा है।

उपन्यास यद्यपि अन्य पुरुष शैली में लिखा गया है और उपन्यासकार एक इतिहासज्ञ की भाँति सम्पूर्ण कथा का वर्णन करता है, फिर भी उपन्यास में जगतप्रकाश को जिस स्थान पर रखा गया है, उससे उपन्यास जगतप्रकाश की आत्मकथा जैसा प्रतीत होता है, अतः लेखक उसे आत्म-कथात्मक शैली में भी लिख सकता था। एक प्रतिभाशाली और सुशिक्षित युवक के रूप में जगतप्रकाश का विचारवान् एवं चिन्तक होना नितान्त स्वाभाविक है। इसीलिए जगतप्रकाश के चिन्तन-मन को उपन्यासकार ने विश्लेषणात्मक शैली में अभिव्यक्ति दी है। जगतप्रकाश कभी स्वयं अपने आचरण पर मनन करता है तो कभी दूसरे पात्र उसके आचरण का विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार वर्णन के साथ इस उपन्यास में विश्लेषण को भी पर्याप्त स्थान मिला है।

'सबहिं नचावत राम गोसाईं' वर्मा जी का संभवतः सर्वाधिक सुनियोजित उपन्यास है। इस उपन्यास में एक-एक पृष्ठ की योजना दिखती है। यह उपन्यास चार भागों में विभक्त है। उपन्यास का पूर्वार्द्ध तीन भागों में विभक्त है (कुल पृष्ठ संख्या 129) इसके एक-एक भाग में क्रमशः एक वणिक(पहले एक परचूनी बाद में एक प्रसिद्ध उद्योगपति), एक क्षत्रिय(पहले डाकू,बाद में नेता) और एक ब्राह्मण(पहले विख्यात कर्मकाण्डी,बाद में जमींदार,जमींदारी उन्मूलन के कारण बिगड़ी आर्थिक स्थिति में सरकारी अफसर और अंत में विधायक) परिवार की तीन-तीन पीढ़ी की कथा है। इन्हें उपन्यास के प्रमुख पात्रों(राधेश्याम,जबरसिंह और रामलोचन) के वंशानुगत संस्कारों को प्रदर्शित करने के लिए रखा गया है किन्तु इसके साथ-साथ तद्युगीन भारत की राजनीति-सामाजिक और आर्थिक झाँकी भी उपन्यासकार ने प्रस्तुत कर दी है। इस प्रकार वंशानुक्रम संस्कारों एवं वातावरण के समन्वित प्रभाव से जो चरित्र विकसित हुआ है, उससे ही उपन्यास के उत्तरार्द्ध की कथा आगे बढ़ती है। वर्मा जी की कला की प्रशंसा करनी पड़ती है कि प्रत्येक परिवार को गिन-गिनकर 43-43 पृष्ठ दिए गए हैं। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में कुल पृष्ठसंख्या 137 है, जबकि पहले तीन भागों की कुल संख्या 129 होती है। इस प्रकार उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध से केवल 8 पृष्ठ अधिक है। उपन्यास में केवल पृष्ठसंख्या की योजना ही नहीं है वरन् पूर्वार्द्ध के प्रत्येक भाग की काल-सीमा भी एक है। प्रत्येक खण्ड की कथा का प्रारम्भ सन् 1920-21 के आसपास से होता है। और अन्त बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के अंतिम वर्षों से होता है। उत्तरार्द्ध में प्रत्येक भाग की अंतिम पीढ़ी के व्यक्तियों को लेकर उनके सम्मिलित योगदान से कथा का ताना-बाना बुना जाता है और जब ल एक पूँजीपति, नेता और एक भावुक युवक-अफसर परस्पर

सम्पर्क में आते हैं तो भारत की आर्थिक,राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का नग्न -चित्र हमारी आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। एक समीक्षिका ने उपन्यास की इस काल-योजना पर आपत्ति उठाते हुए लिखा है -`वर्मा जी के पाठकों को प्राय: यह कहते हुए सुना जाता है कि अखबार की कतरनों को तरतीब से सजाने में निपुण हैं।`सबहिं नचावत राम गोसाईं` में भी ये कतरनें यथेष्ट मात्रा में हैं। इसी कारण प्रस्तुत उपन्यास की रसात्मक अनुभूति में कई बार व्यवधान उपस्थित हुआ है।`[1] वर्मा जी की अखबार की कतरनें तरतीब से सजाने की निपुणता की बात तो सत्य है, किन्तु इसके कारण रसात्मक अनुभूति में कोई बाधा पहुँची है- इस बात से सहमत नहीं हुआ जा सकता। उपर्युक्त तीनों कथाओं का पृथक्-पृथक् महत्व है और वे स्वतंत्र इकाई के रूप में अवतरित हुई हैं। इनके स्वतंत्र-रूप में एकता स्थापित करने के लिए ही वर्मा जी ने तीनों कहानियों का काल लगभग एक-सा रखा है। इस काल-एकता के कारण ही उत्तरार्द्ध की कहानी में पूर्वार्द्ध की तीनों कहानियों के व्यक्तियों को एक साथ उपस्थित किया जा सका है। इससे रसानुभूति में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। एक कथा के वर्तमानकालिक वातावरण के पश्चात् जब हम दूसरी कथा में पुन: अतीत काल में पहुँचते हैं तो एक झटका अवश्य लगता है किन्तु इस झटके से हम पुन: नयी ताजगी और उत्साह के साथ दूसरे परिवार की कथा पढ़ने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

उपन्यास की मूल कथा तो `रामलोचन-भावना`(उत्तरार्द्ध) वाले अंश से प्रारम्भ होती है।`राधेश्याम-बुद्धि`,`जबरसिंह-भाग्य`, और `रामलोचन पाण्डे-उठा-पटक` वाले भाग तो मूलकथा की पृष्ठभूमि -जैसे है और मूलकथा के पात्रों के चरित्र को गहरा रंग देने के लिए रखे गये हैं। प्रकारान्तर से तद्युगीन स्थिति का भी चित्रण उपन्यासकार ने कर दिया है। इस प्रकार `सबहिं नचावत राम गोसाईं` में कथा-संयोजन की नवीन शिल्पविधि वर्मा जी की बहुत बड़ी उपलब्धि है। यों वर्मा जी ने अपने `टेढ़े मेढ़े रास्ते`,`भूले बिसरे चित्र`,`सीधी सच्ची बातें और प्रश्न और मरीचिका`- वृहद्काय उपन्यासों में कथा-संतुलन और एकता बनाए रखने के लिए विशिष्ट योजना का आश्रय लिया है, परन्तु इस दृष्टि से `सबहिं नचावत राम गोसाईं`सर्वाधिक सफल और आकर्षक बन पड़ा है।

`सबहिं नचावत राम गोसाईं` की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कथा और व्यंग्य को ऐसा गूँथा गया है कि उपन्यास में तीव्र गति से घटित होनेवाली घटनाओं के माध्यम

1- भगवतीचरण वर्मा -`चित्रलेखा` से `सबहिं नचावत राम गोसाईं तक`- डॉ० कुसुम वार्ष्णेय, पृ० 207

से और लेखक के 'नैरेशन' से कथा तीव्र वेग से चलती जाती है। साथ-ही-साथ कभी लेखक की मीठी चुटकियों से तो कभी [redacted] पात्रों के स्वयं के कार्य-कलाप और संवादों से भारतीय समाज की अनेक विकृतियों पर व्यंग-प्रहार का कार्य भी सम्पन्न होता जाता है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' व्यंजनापूर्ण होते हुए भी रोचक है और कथा-रस का पूर्ण आस्वादन करवाने में समर्थ है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' व्यंग्य शैली में लिखा गया उपन्यास है। कथा को संक्षिप्त विवरणों के माध्यम से और अभिनयात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। 8-10 पंक्ति के एक-एक पैराग्राफ में घटनाओं की सूचना, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और उनके क्रिया-कलापों को इतने सघन रूप में प्रस्तुत किया गया है कि एक शब्द भी व्यर्थ नहीं प्रतीत होता। इस उपन्यास की वर्णन-शैली ऊपर से देखने में तो प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों का स्मरण कराती है किन्तु उसमें अपार व्यंजना भरी है, इसका ज्ञान हमें उस पर विचार करने से लगता है। एक उद्धरण द्रष्टव्य है -' और उस दिन स्वतंत्रता के प्रथम दिवस वाले उत्सव को राधेश्याम ने जिस शान के साथ मनाया, वह कानपुर नगर के इतिहास में अद्वितीय समारोह साबित हुआ। उसकी बिलों में पड़ा हुआ सड़ा आटा और गोदामों में भरा हुआ सड़ा तेल- इन सबका ठिकाना लग गया। दो दिन तक कंगालों को भोजन दिया गया, और सारे नगर में राधेश्याम की जय-जयकार होती रही। कंगालों के इस भोज के बाद कानपुर नगर में भिखमंगों और कंगालों की संख्या आधी रह गयी, आधे लोग राधेश्याम के सड़े भोजन के कारण अपने अति सड़े हुए जीवन से मुक्ति पा गए।

भिखमंगों की इस सामूहिक मृत्यु से जनता में कुछ खलबली मची, और इससे राधेश्याम को चिन्ता हुई। लेकिन मामला भिखमंगों का था, वह दबा दिया गया।'[1] इन वाक्यों को पढ़कर ऐसा लगता है कि हम एक घटना का विवरण पढ़ रहे हैं और हम उसी प्रवाह में उसे पढ़ जाते हैं किन्तु एक बार पढ़ जाने पर हमें ध्यान आता है कि उपन्यासकार ने कथा के प्रवाह के चलते-चलते ऐसी चुटकी ले ली है कि जल्दी कोई देख भी नहीं पाता और जिस पर व्यंग्य किया गया है - उसका काम तमाम हो जाता है। इस छोटे- से अंश में व्यापारी-वर्ग की अवसरवादिता धर्माडम्बर, व्यापारिकता, कायरता और उनका विभिन्न क्षेत्रों में प्रभाव अभिव्यंजित हो गया है। इसी प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास का प्रत्येक पात्र, घटना और उसका विवरण व्यंग्यात्मक शैली में

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृ० 40

प्रस्तुत किया गया है। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में दो स्थल पर संस्मरणात्मक शैली का आभास भी मिल जाता है। पंडित जटाशंकर बाजपेयी और त्यागमूर्ति का पूर्व वृत्त इस शैली में प्रस्तुत किया गया है।[1] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य-शैली को प्रधानता देते हुए वर्मा जी ने इस उपन्यास में मिश्रित शैली का प्रयोग किया है। उपन्यास का अंत वर्मा जी के नियतिवादी दर्शन के द्वारा ही हुआ है। -'पढ़ा था -'सबहिं नचावत राम गोसाईं'। तो यह सब चरित्र राम गोसाईं के इंगित पर नाच रहे थे।

यह चरित्र ही नहीं, यह दुनिया रामगोसाईं के इंगित पर नाच रही है, यानी मैं भी रामगोसाईं के इंगित पर नाचते हुए यह कहानी लिख डाली है।' -उपन्यास की इन अंतिम पंक्तियों के द्वारा उपन्यासकार ने अपना जीवन-दर्शन व्यक्त नहीं करना चाहा है जैसा कि कुछ आलोचकों को भ्रम हुआ है वरन् इन पंक्तियों में लेखक की विनोदी प्रकृति मुखरित हो उठी है, उसने समाज के समस्त अनाचरण, बुराइयों आदि का उत्तरदायित्व ईश्वर पर थोपने वालों की जाते-जाते भी मीठी चुटकी ले ली है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने अपने दर्शन एवं चिन्तन को कहीं भी प्रत्यक्षत: रखने का यत्न नहीं किया है। उपन्यास के तीव्र वेग में इसके लिए कोई गुंजाइश भी नहीं थी। निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' का गठन और उसकी योजना अत्यंत सुदृढ़ है, औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से वहउनकी एक महत्व-पूर्ण कृति है।

'प्रश्न और मरीचिका' वर्मा जी का अन्तिम उपन्यास है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह वर्मा जी का अन्तिम पनोरमिक उपन्यास है। इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत के लगभग 16 वर्षों की कहानी है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत के विकास की दिशा क्या है? भारतीय-जन आजादी पाने के बाद भी क्यों निराशा और विकलता का अनुभव कर रहे हैं? वे कौन-से प्रश्न हैं जिनकी मरीचिका में भ्रमित भारतीय जनता अपना गम भुलाने का यत्न कर रही है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपन्यासकार ने अनेक उपकथाओं का आश्रय लिया है। इस उपन्यास में एक केन्द्रीय कथा न होकर एक केन्द्रीय व्यक्ति है जिसके सम्पर्क में नेता, सरकारी अफसर, व्यापारी, होटल मालिक, फिल्म अभिनेता आदि तरह-तरह के लोग आते हैं और अपनी जीवन कथा के माध्यम से स्वतंत्र भारत का विशाल चित्र प्रस्तुत करते हैं। यह उपन्यास वर्मा जी की महान महत्वाकांक्षा का परिणाम है[2] और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। वर्मा जी

1- सबहिं नचावत राम गोसाईं- पृष्ठ-179 से 181 तथा 152

2- समीक्षा- नवम्बर, 1973 -पृ० 18

की वृद्धावस्था तक के अगाध अनुभव इसमें व्यक्त हुए हैं, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ राजनीतिक घटनाओं को छोड़कर 'प्रश्न और मरीचिका' में अधिकांश पात्र, घटनाएँ, समस्याएँ और विचार ऐसे हैं जो थोड़े बहुत अंतर से उनके अन्य उपन्यासों में विद्यमान हैं। 'सीधी सच्ची बातें' में स्वतंत्रता-संग्राम की राजनीतिक गतिविधियों और देश में विकसित पूँजीवाद का स्वर अधिक मुखर हुआ है और 'प्रश्न और मरीचिका' में उन लोगों को प्रमुखता मिली है जिनके हाथ में देश की सम्पूर्ण शक्ति सिमटकर केन्द्रभूत हो गयी है। इनमें देश की नीति का निर्धारण करनेवाले सेक्रेटरी, नेता और उद्योगपति प्रमुख हैं। और चूँकि भारतीय राजनीति का मुख्य केन्द्र दिल्ली है - इसलिए दिल्ली को ही इस उपन्यास का मुख्य कार्यस्थल बनाया गया है।

'प्रश्न और मरीचिका' के कथानक में दो धाराएँ स्पष्टतया देखी जा सकती हैं। एक में देश की राष्ट्रीय महत्व की विभिन्न घटनाओं (जिसमें राजनीतिक उतार-चढ़ाव, आम-चुनाव, राजनीतिक कार्यकर्ताओं का नैतिक पतन, पाकिस्तानी और चीनी आक्रमण, कामराज योजना तथा देश में औद्योगिकीकरण के प्रयत्न आदि का समावेश हो गया है) का क्रम है तो दूसरी में उदयराज के सामाजिक जीवन की अनेक छोटी-छोटी धाराएँ सम्मिलित हो गयी हैं। इन दोनों को परस्पर गूँथने के लिए वर्मा जी ने उपन्यास के नायक उदयराज को एक विख्यात पत्रकार बनाय है, जिसका देश-विदेश की राजनीति में अच्छा दखल है। इसके अतिरिक्त पिता, और अपने व्यक्तिगत सम्बंधों के कारण उसका सामाजिक जीवन भी विस्तृत होता गया है। इस प्रकार भारतीय राजनीति के सम्पर्क में बने रहकर और विभिन्न व्यक्तियों से अंतरंगता स्थापित करके उदयराज जो अनुभव प्राप्त करता है, उन्हें उसकी आत्मकथा के रूप में उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। उदयराज एक सुशिक्षित व्यक्ति है और एक पत्रकार के नाते विभिन्न स्थितियों और समस्याओं पर विवाद करने तथा चिन्तन करने का अवसर भी उसे मिलता है, इसलिए उसके माध्यम से अपना जीवन-दर्शन प्रस्तुत करने में उपन्यासकार को विशेष सुविधा हुई है। उपन्यास के अन्य पात्रों के वार्तालाप भी इस कार्य में सहायक बने हैं। अधिकांश पात्रों के सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित होने के कारण उनमें अस्वाभाविकता नहीं आई है किन्तु कहीं-कहीं वे काफी लम्बे खिंच गये हैं जिससे कथा-शैथिल्य तो आया ही है, नीरसता भी आ गयी है। उपन्यास में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ कथा एकदम ठप हो गयी है और उदयराज की वाणी में उपन्यासकार भारत का इतिहास प्रस्तुत करने लगा है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रश्न और 'मरीचिका' वर्मा जी का अन्तिम

पनोरमिक उपन्यास है और विशेषरूप से `सीधी सच्ची बातें ` से उसकी समानता देखकर आश्चर्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह एक ही बड़े उपन्यास के दो `वोल्यूम ` हैं। `प्रश्न और मरीचिका ` में सीधी सच्ची बातें के गुण-दोष ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। जिस प्रकार `सीधी सच्ची बातें ` में जगतप्रकाश के मन में उठी समस्या का दूसरा पहलू जमील-अहमद के शब्दों में व्यक्त होता है, उसी प्रकार `प्रश्न और मरीचिका ` में जनार्दन सिंह की स्थिति है। `प्रश्न और मरीचिका ` में भी अगाध अनुभव की सच्चाई तो है, किन्तु जीवन के विशाल अनुभव को अपने उपन्यास के द्वारा प्रस्तुत कर देने के मोह ने उपन्यास में कहीं-कहीं अरोचकता उत्पन्न कर दी है और कुछ विस्तृति के कारण कथा-संगठन में ढीलापन आ गया है।

प्रस्तुत उपन्यास चार भाग में विभाजित है। इस विभाजन का मुख्य आधार उदयराज के जीवन में आनेवाले महत्वपूर्ण मोड़ बने हैं। प्रथम भाग का उदयराज एक उठता हुआ नवयुवक है, उसमें जीवन के हर क्षेत्र में कुछ कर दिखाने की लालसा है। भावना का उद्दाम वेग उसकी कच्ची उम्र का अहसास करा देता है। द्वितीय खण्ड में उदयराज यथार्थ की भूमि पर स्थापित होता हुआ दिखाई देता है। भटकन और कामना का मोह जाल इसमें भी है, किन्तु खण्ड के अन्त तक विवाह के बन्धन में बँधकर कुछ स्थायित्व की भावना उसमें दिखती है। तृतीय भाग में उदयराज अन्य क्षेत्रों में पूर्ण उत्तरदायित्व एवं `मेच्योरिटी ` का परिचय देता है, केवल वासना ही उसे एक बार भटकाती है, परन्तु जल्दी ही वह उस पर नियंत्रण करना भी सीख जाता है। और इस भाग के अन्त तक वह एक पारिवारिक व्यक्ति बन जाता है। वह बच्चों का पिता है, बहन का भाई है और अपने कर्तव्य को पूरा करते हुए सामाजिक व्यक्ति की तरह व्यवहार करता दीखता है और अन्तिम भाग में वह परिवार और परिवेश की परिस्थितियों से घिरे एक अत्यंत संयमी एवं चिन्तनशील सद्गृहस्थ के रूप में दिखलायी देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यास एक निश्चित योजना और क्रम को ध्यान में रखकर लिखा गया है। उनमें विभिन्न घटनाओं को इस प्रकार संजोया गया है कि जीवन के सहज-सरल क्रम की तरह कथानक गतिशील रहता है। उदयराज एक सामान्य व्यक्ति की भाँति जीवन में आनेवाली परिस्थितियों के भँवर में गिरता-उठता, डूबता-उतराता चलता जाता है। उपन्यास में राजनीतिक वातावरण अथवा तात्विक विवेचन के विस्तार से कहीं-कहीं शैथिल्य आ गया है किन्तु उसके कथानक में असम्बद्धता एवं विशृंखलता का दोष कहीं भी नहीं आया है।

वर्मा जी के अन्य उपन्यासों की भाँति `प्रश्न और मरीचिका ` की शैली आत्मकथात्मक होते हुए भी वर्णन प्रधान है। ध्यातव्य है कि एक विद्वान ने आत्मकथात्मक शैली को वर्णनात्मक शिल्पविधि के अन्तर्गत स्थान दिया है।[1] राजनीतिक परिस्थितियों एवं विभिन्न समस्याओं के

1- हिन्दी उपन्यास शिल्प :बदलते परिप्रेक्ष्य, डॉ० प्रेम भटनागर, पृ०-

विवेचन एवं विश्लेषण की प्रवृत्ति भी इस उपन्यास में पुष्कल परिमाण में दिखती है। एक स्थल पर पत्रात्मक शैली का प्रयोग भी हुआ है।[1]

वर्मा जी के सभी उपन्यासों के कथा-संगठन के विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्मा जी ने प्रारम्भ में पाप-पुण्य और प्रेम आदि शाश्वत समस्याओं को आधार बनाकर, ऐतिहासिक परिवेश में कल्पना के सहयोग से उपन्यास के कथानकों का गठन किया। परन्तु कालान्तर में आधुनिक समाज की विकृतियों एवं कुरीतियों ने उन्हें ऐसा झकझोरा कि उन्होंने युग-चित्रण को ही अपना लक्ष्य बना लिया। इसीलिए `पतन` और `चित्रलेखा` को छोड़कर वर्मा जी ने अपने सभी उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं, परिवर्तनों एवं उनसे सद्भूत परिस्थितियों में साँस लेते मनुष्यों को अपने उपन्यासों में स्थान देना प्रारम्भ कर दिया। समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन को चित्रित करने के लिए उन्होंने कथानक की योजना और संगठन की भी एक विशिष्ट पद्धति का चयन किया है। वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों का कथानक सुसंगठित एवं सुनियोजित है। कथा की धारा विशिष्ट योजना के तटबन्धों से होती हुई प्रवाहित होती है। उन्होंने अपने उपन्यासों का संयोजन कुछ इस प्रकार किया है कि उसमें आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं को पूर्णरूपेण पृथक् कर पाना एक दुष्कर कार्य है। `पतन`, `चित्रलेखा`, `टेढ़े-मेढ़े रास्ते`, `भूले बिसरे चित्र` और `रेखा` में एक आधिकारिक कथा और कुछ प्रासंगिक कथाएँ हैं, जो अपने रूढ़ अर्थों को सार्थक करती हुई अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व बनाए रखती हैं। इनका उल्लेख यथा स्थान किया जा चुका है। इन आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं में बराबर तारतम्य बना रहता है। किन्तु उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त `सामर्थ्य और सीमा`, `सीधी-सच्ची बातें`, `सबहिं नचावत राम गोसाईं`, `प्रश्न और मरीचिका` आदि उपन्यासों में कई कथाएँ हैं, जो अपनी समान महत्ता प्रकट करती हैं, उनमें से किसी एक को आधिकारिक और किसी को प्रासंगिक कह पाना कठिन है। इनमें या तो एक प्रमुख पात्र के चारों तरफ कई कथाएँ गूँथ दी गई हैं, या कई महत्वपूर्ण पात्रों की कथाएँ एक साथ चलती रहती हैं(जैसे सबहिं नचावत राम गोसाईं) वर्मा जी के उपन्यासों में अधिकांशत: कुछ प्रमुख पात्रों के जीवन को आधार बनाकर उनके सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों के छोटे-छोटे प्रसंग प्रस्तुत किए गए हैं जो `प्रसंगपद्धति` के द्वारा एक प्रवाह में छोटे-छोटे बुलबुलों की तरह उठकर विलुप्त होते जाते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है ये प्रसंग समाज के विभिन्न क्षेत्रों का चित्रण करने के उद्देश्य से रखे गये हैं।

1- प्रश्न और मरीचिका- पृ० 515 से 517

वर्मा जी के उपन्यासों के कथानक की धाराप्रवाहिकता में व्यवधान की स्थितियाँ प्राय: कम आती हैं,तथापि जब उनके उपन्यासों में कथा की गति अवरुद्ध हो जाती है अथवा धीमी हो जाती है, तो वर्मा जी की कल्पनाकुशल रचनात्मक बुद्धि आकस्मिक एवं नाटकीय स्थितियों के समावेश से कथा-प्रवाह को तीव्र वेग प्रदान करती है ।

कथा के दृढ़ गठन के लिए वर्मा जी ने विभिन्न रीतियों का अवलम्ब लिया है । `चित्रलेखा`,`तीन वर्ष`,`सामर्थ्य और सीमा` तथा `रेखा` में विभिन्न समस्याएँ ही कथानक की दृढ़ गढ़न का आधार हैं । इसके अतिरिक्त `तीन वर्ष` को छोड़कर अन्य तीनों उपन्यासों की नायिकाओं ने भी कथानक को सुसम्बद्ध करने में सहायता की है । इसी प्रकार `वह फिर नहीं आई` की रानी श्यामला भी लघु उपन्यास को श्रृंखलाबद्ध किए रहती है ।`आखिरी दाँव` और `अपने खिलौने` में आकस्मिक घटनाएँ बहुत हैं फिर भी एक के अन्दर से एक घटनाएँ इस प्रकार घटित होती हैं कि उनका क्रम नहीं टूटता । अत: इनमें कथा की धारावाहिकता ही कथा के गठन का कारण बनी है ।`टेढ़े मेढ़े रास्ते`,`भूले बिसरे चित्र`,`सीधी सच्ची बातें` और `प्रश्न और मरीचिका` में गढ़न के लिए एक से अधिक सूत्रों का उपयोग हुआ है, जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है । फिर भी इन चारों उपन्यासों में उनके प्रमुख पात्र ही कथा का संचालन करते हैं । उनके साथ घूमते हुए कथानक के विविध पक्ष पाठक की आँखों के समक्ष क्रमश: गुजरते जाते हैं । इसी प्रकार `थके पाँव` में तो सम्पूर्ण कथा केशव के मस्तिष्क में दीप्तित हुई है ।`सबहिं नचावत राम गोसाईं` में कथाओं के विशिष्ट क्रम के द्वारा सम्पूर्ण उपन्यास को सु संगुफित किया गया है ।

जहाँ तक उपन्यासों के आदि-अंत का प्रश्न है, वह वर्मा जी के मनोमस्तिष्क में पूर्ण स्पष्ट रहते हैं किन्तु उनके प्रस्तुतीकरण के लिए उन्हें कोई विशेष आग्रह नहीं रहता । कोई विशेष लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधे बिना पात्रों के क्रिया-कलाप से अथवा उनके चरित्र-परिचय से उपन्यास की कथा एकदम शुरू हो जाती है और मध्य में घटनाओं के क्रमिक संघटन और पात्रों की गतिविधियों से विस्तार पाती हुई समाप्त भी हो जाती है । वर्मा जी के प्रथम और द्वितीय उपन्यास `पतन` और `चित्रलेखा` में ही उपक्रमणिका और उपसंहार देने की प्रवृत्ति मिलती है । इनके अतिरिक्त वर्मा जी के उपन्यासों में भूमिका या प्रथम वक्तव्य भी नहीं मिलते। `चित्रलेखा` में पहले भूमिका दी गयी थी किन्तु बाद के संस्करणों में उसे भी हटा दिया गया । इससे पाठक को उपन्यास के समग्र प्रभाव से अपनी धारणा बनाने की पूरी स्वतंत्रता रहती है ।

वस्तु-विधान के लिए वर्मा जी ने अपने सभी उपन्यासों में अधिकांशत: वर्णनात्मक शैली का आश्रय लिया है, तथापि आवश्यकतानुसार विश्लेषणात्मक शैली, पात्रों के वार्तालाप, और पत्रात्मक शैली के द्वारा भी उन्होंने उपन्यासों के कथानक को गति प्रदान की है अत: हम कह सकते हैं कि अपने उपन्यासों के रूपबन्ध के लिए वर्मा जी ने विविध शैलियों के समन्वित प्रयोग से कलात्मकता लाने का प्रयास किया है। कहानी कहने और गढ़ने की उनमें महती क्षमता है।